पांगी
अमरसिंह रणपतिया

पांगी

पांगी की लोक संस्कृति एवं कलाएं

लेखक

अमर सिंह रणपतिया

मुख्य संपादक

बी॰ आर॰ जसवाल

संपादक

डॉ॰ करम सिंह

सहयोग

सूनृता गौतम, देवराज शर्मा

प्रकाशक

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

दो शब्द

हिमाचल प्रदेश में विभिन्न जनजातियों का संगम है। प्राचीन काल से ही हिमालय क्षेत्र अनेक जनजातियों की कर्मभूमि रहा है। आज भी हिमाचल प्रदेश के दुर्गम क्षेत्र भरमौर, पांगी, लाहुल स्पिति और किन्नौर में जनजातीय लोक संस्कृति की प्राचीन एवं समृद्ध विरासत सुरक्षित है।

पांगी जनपद हिमाचल प्रदेश के जिला चम्बा का एक जनजातीय उपमण्डल है। यद्यपि पांगी पहुंचना कुछ वर्ष पहले तक बहुत कठिन था परंतु अब पांगी को अन्य क्षेत्रों से सड़क मार्ग से जोड़ने के प्रयास बड़ी तेजी तथा प्राथमिकता से किए जा रहे हैं।

यद्यपि विकास एवं आधुनिकता से पांगी घाटी का नाता भी धीरे–धीरे जुड़ता जा रहा है तथापि यह क्षेत्र अपनी भौगोलिक विषमता तथा प्राकृतिक स्थिति के कारण अभी भी दुर्गम है। इसी कारण से यहां का जनजीवन अत्यन्त कठिन तथा श्रमसाध्य है।

पांगी के लोग अपनी संस्कृति से अथाह प्रेम करते हैं। इसीलिए आज भी यहां इस जनजातीय क्षेत्र की विशेष सांस्कृतिक पहचान बनी हुई है। इस जनजातीय भूभाग की परम्पराएं पूर्णतया भारतीय सनातन जीवन मूल्यों पर आधारित हैं। यहां हिन्दू तथा बौद्ध संस्कृति का अनूठा संगम है। यहां के सनातनी हिन्दू जहां अपनी परम्परा के अनुसार देवी देवताओं के मंदिरों में पूजा–अर्चना करते हैं, वहां बौद्ध मत के अनुयायी अपनी बौद्ध बस्तियों में स्थापित गोम्पाओं में अपनी धार्मिक परम्पराओं का निर्वाह करते हैं। सभी मिलजुल कर विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले आयोजनों में भाग लेते हैं।

वास्तव में संस्कृति की मौलिकता तथा मानव जीवन की कठिन साधना का जीवन्त रूप तथा धार्मिक सौहार्द पांगी में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है जहां भिन्न–भिन्न आस्थाओं के लोग परस्पर सद्भावपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए आनन्द के साथ रहते हैं।

हिन्दू लोग श्रद्धापूर्वक बौद्धों के गोम्पा में जाते हैं और बौद्ध लोग हिन्दू देवी देवताओं के प्रति पूर्ण आस्था व्यक्त करते हैं और एक–दूसरे के मेले त्यौहारों को परस्पर खूब हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं।

"पांगी जनपद की लोक संस्कृति" पर आधारित तथा श्री अमर सिंह रणपतिया द्वारा लिखित इस पुस्तक को प्रकाशित करके हिमाचल अकादमी ने महत्वपूर्ण तथा प्रशंसनीय कार्य किया है। यह पुस्तक पाठकों को जहां पांगी के लोक जीवन के विविध पहलुओं का परिचय कराएगी, वहां राष्ट्रीय एकात्मता का दर्शन भी इस कृति के माध्यम से हो सकेगा।

मैं पुस्तक की लोकप्रियता की कामना करता हूं।

प्रो॰ प्रेम कुमार धूमल
मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश
अध्यक्ष, हिमाचल अकादमी

भूमिका

हिमाचल प्रदेश जहां प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रख्यात है वहां दुर्लभ भौगोलिक स्थिति के कारण यहां का जनजीवन कठिन तथा परिश्रमसाध्य भी है। यहां प्रकृति का अनुपम सौंदर्य चारों ओर बिखरा पड़ा है। इसीलिए हिमाचल की संस्कृति तथा कला प्राचीन काल से ही आकर्षण एवं अध्ययन का केन्द्र रही है।

हिमाचल क्षेत्र के अंचल में हिमशिखरों की गोद में बसी है – अत्यंत दुर्गम पांगी घाटी। यद्यपि दुर्गम पहाड़ी रास्ते, कष्टसाध्य जीवन पांगी क्षेत्र की पहचान है तथापि सांस्कृतिक परंपराओं की अनमोल विरासत पांगी जनपद की अपनी अलग पहचान कायम किए हुए है। यहां का लोकमानस प्राकृतिक आपदाओं से सदा संघर्षरत रहता है परन्तु मेले–त्यौहारों की खुशियां, धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक भाईचारा यहां की मिट्‌टी तथा लोक जीवन में पूरी तरह से रचा–बसा है जो सब दुःखों को कम करने में सहायक एवं सफल सिद्ध होता है।

पंगवाल जनजातीय लोक संस्कृति आधुनिक परिवेश की चकाचौंध से बचकर अभी तक अपनी पारम्परिक विरासत का कवच धारण किए हुए है।

देवी–देवताओं के प्रति सुदृढ़ विश्वास, धार्मिक सद्‌भावना अतिथि सत्कार तथा चहुंमुखी विकास के लिए कठोर परिश्रम पंगवाल जनजातीय संस्कृति की धरोहर है।

लोक जीवन की इन समृद्ध परम्पराओं के संरक्षण के लिए जागरूकता तथा लोकसाहित्य की विभिन्न विधाओं का प्रलेखन तथा प्रकाशन करने हेतु हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी ने इस पर्वतीय क्षेत्र में भी अपनी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। जिसका उदाहरण है–"पांगी: पंगवाल

जनजातीय लोक संस्कृति'' पुस्तक का प्रकाशन। पांगी क्षेत्र की अन्य पारंपरिक लोककलाओं, प्राचीन पांडुलिपियों आदि के संरक्षण के लिए भी अकादमी कार्य कर रही है।

इसके साथ–साथ अकादमी ने पांगी क्षेत्र के देव स्थलों के प्रलेखन तथा पारम्परिक लोक गीतों की कैसटों का निर्माण करके भी प्रशंसनीय कार्य किया है तथा लोक संस्कृति के प्रलेखन एवं संरक्षण के लिए कुछ और महत्त्वाकांक्षी योजनाएं संचालित की जा रही हैं।

हिमाचल प्रदेश के सुधी विद्वानों, शोधकर्त्ताओं तथा साहित्य एवं कलाप्रेमियों से भी आशा है कि वे पारंपरिक लोक संस्कृति के संरक्षण एवं प्रलेखन तथा प्रकाशन को प्राथमिकता देंगे तथा इस दिशा में अकादमी द्वारा किए जा रहे प्रयासों को सफल बनाने में भी सकारात्मक सहयोग प्रदान करेंगे ताकि लोक साहित्य की विरासत की सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके।

पांगी की जनजातीय लोक संस्कृति पर केन्द्रित इस पुस्तक के प्रकाशन के लिये अकादमी को बधाई।

मनीषा नन्दा
प्रधान सचिव (भाषा कला, संस्कृति)
हिमाचल प्रदेश सरकार

प्राक्कथन

पांगी रे देशा तिलमिल पाणी,
मेरा मन लगा पांगी हो।

पारम्परिक लोकगीत की ये पंक्तियां पांगी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करती हैं। मेरा मन पांगी की सुन्दरता और विशेषताओं में भाव विभोर हो गया है। जहां कि तिलमिल जैसा गुणकारी पानी उपलब्ध है और प्रकृति ने चारों ओर अपनी सुंदरता की मनमोहक छटा बिखेर रखी है।

चन्द्रभागा नदी के मधुर नाद में फूली–फली पांगी की प्राकृतिक छटा और यहां के लोक जीवन के विविध रंग वास्तव में ही अत्यन्त रमणीय हैं। इसी रमणीयता की मोहकता में ही लोक गायक के अन्तर्मन से स्वर मुखरित होते हैं–

पांगी होली छैल़ पंगवाली
मेरा मन लगा पांगी हो
पांगी होले भोटल़ी रे नाचा
मेरा मन लगा पांगी हो

पांगी का प्राकृतिक सौंदर्य, नृत्य, गीत तथा शुद्ध जलवायु सभी को बरबस अपनी ओर आकर्षित करता है।

पांगी के मुख्यालय किलाड़ के धरवास गांव के समीप, सड़क के साथ ही लगभग 100 मीटर की दूरी पर निचली और तिलमिल पानी का स्रोत हैं। यह पानी बहुत स्वादिष्ट है और अत्यन्त स्वास्थ्यवर्द्धक माना जाता है। कहते हैं कि राजाओं के शासन काल में चम्बा के राजा के लिए तिलमिल पानी पांगी से चम्बा लाया जाता था।

पांगी में हिन्दू धर्मावलंबी पंगवाल और बौद्ध मतावलंबी भोट परस्पर अत्यंत सद्भावनापूर्वक एवं मिलजुलकर रहते हैं और समस्त सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयोजनों में एक दूसरे का साथ

देते हैं। इसी प्रकार अनेकों विशेषताएं यहां की सांस्कृतिक परम्पराओं तथा लोक जीवन और प्रकृति की रमणीयता में आत्मसात् हैं।

प्रस्तुत कृति अकादमी की परियोजनाओं के अन्तर्गत प्रदेश के सुप्रतिष्ठित लेखक श्री अमरसिंह रणपतिया द्वारा लिखी गई है। हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र एवं यहां की संस्कृति के बारे में श्री रणपतिया जी का विशेष रुझान और गूढ़ अध्ययन है।

इस पुस्तक में उन्होंने पांगी के इतिहास, लोक जीवन, भाषा आदि सभी पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला है जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

हिमाचल प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री प्रो. प्रेम कुमार धूमल जी की हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति एवं परंपराओं के संरक्षण में विशेष अभिरुचि है। उसी का परिणाम है कि हिमाचल अकादमी की गतिविधियों को पर्याप्त विस्तार मिला है और अकादमी की गतिविधियां पांगी जैसे दूर दराज के क्षेत्र तक पहुंची हैं।

प्रधान सचिव भाषा–संस्कृति, हिमाचल प्रदेश सरकार के मार्गदर्शन में अकादमी द्वारा विभिन्न योजनाओं के माध्यम से जनजातीय संस्कृति एवं कलाओं के संरक्षण, प्रलेखन तथा प्रकाशन की दिशा में विशेष प्रयास किए जा रहे हैं। अतः हम प्रधान सचिव भाषा संस्कृति हि0 प्र0 सरकार के अत्यन्त आभारी हैं।

हिमाचल प्रदेश सरकार के जनजातीय विकास विभाग द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायतानुदान के अंतर्गत इस पुस्तक का प्रकाशन संभव हो सका है। अतः अकादमी जनजातीय विभाग का आभार व्यक्त करती है। आशा है, यह कृति पाठक जगत् में अभिनन्दनीय होगी।

बी॰ आर॰ जसवाल

सचिव

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

आमुख

पांगी क्षेत्र अपनी सांस्कृतिक विरासत के लिए जाना जाता है। भौगोलिक स्थिति अत्यन्त विकट होने के बाद भी यहां का जनजीवन पूजा–अर्चना, मेले–त्यौहारों से भरपूर है। इस विस्तृत पर्वतीय क्षेत्र का भ्रमण करके यहां के इतिहास तथा लोक साहित्य की सूचनाओं का संकलन असंभव नहीं तो सुगम भी कतई नहीं है। पुनरपि इस पुस्तक में पांगी के इतिहास, लोक संस्कृति, समाज व्यवस्था, रहन–सहन, खान–पान, देवी देवता, मंदिर तथा लोक कलाओं का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

हिमाचल प्रदेश के लोकप्रिय मुख्यमंत्री प्रो॰ प्रेम कुमार धूमल जी माननीय अध्यक्ष हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी की असीम कृपा से मेरे द्वारा लिखित गद्दी, गुज्जर और पंगवाल इन तीन पुस्तकों का प्रकाशन संभव हो पाया है अन्यथा यह पांडुलिपि अकादमी के पुस्तकालय तक ही सीमित रह जाती।

प्रधान सचिव भाषा संस्कृति श्रीमती मनीषा नन्दा जी ने इस पुस्तक को वर्तमान स्वरूप में प्रकाशित करवाकर अत्यंत सराहनीय कार्य किया हैं। अतः मैं इस उपकार के लिए उनका हृदय से आभारी हूं।

हिमाचल प्रदेश सरकार में जनजातीय विकास विभाग ने भी जनजातीय लोक साहित्य के प्रकाशन को प्राथमिकता प्रदान की, इसलिए मैं उनका भी आभारी हूं।

श्री बी0 आर0 जसवाल सचिव हिमाचल अकादमी का भी आभार प्रकट करता हूं जिनकी कर्तव्यनिष्ठा से पांगी पुस्तक के पुनः प्रकाशन का मार्ग प्रशस्त हो सका।

अकादमी के प्रकाशन अधिकारी डॉ. कर्म सिंह ने मेरी पुस्तकों

के संपादन तथा संशोधन में अथक परिश्रम किया है जिसके फलस्वरूप मेरे एक ही शोध प्रबन्ध में से तीन पुस्तकें प्रकाशित हो सकी हैं।

"पांगी जनजातीय लोक संस्कृति" इस परियोजना में सहयोग के लिए मैं उन समस्त लोकसाहित्य के प्रेमियों का भी आभारी हूं जिन्होंने इस कार्य में मेरा मार्गदर्शन किया तथा मुझे सहयोग प्रदान किया अन्यथा पांगी जैसे दुर्गम इलाके का विस्तृत अध्ययन अकेले एक व्यक्ति के वश का कार्य नहीं है।

पांगी की लोक संस्कृति, इतिहास तथा कलाओं आदि से संबंधित जानकारियां इस पुस्तक के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाने का प्रयास किया गया है परंतु यह इस विषय का प्राथमिक अध्ययन है अंतिम सच नहीं। जैसे बर्फ में सबसे आगे चलने वाला व्यक्ति स्वयं अपनी मंजिल भी तय करता है तथा औरों के लिए भी रास्ता बनाता है।

मुझे उम्मीद हैं कि मेरा यह प्रयास इसके बाद पांगी जनपद का अध्ययन करने वालों के लिए मार्ग का काम करेगा। यदि इस पुस्तक से किसी को कोई उपयोगी जानकारी मिलती है तो मेरा यह प्रयास अवश्य सफल होगा।

आशा है पाठक जनजातीय साहित्य के अध्ययन से लेखकीय परिश्रम को सफल करेंगे जिससे पारंपरिक लोक साहित्य के प्रचार–प्रसार तथा संरक्षण को बल मिलेगा।

अमरसिंह रणपतिया

क्रम

प्रथम अध्याय

पांगी एक परिचय

पांगी : भौगोलिक परिचय

पांगी चम्बा जिला की एक पहाड़ी एवं प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर तहसील है। यह ज़िला चम्बा से उत्तर की ओर हिमाच्छादित ऊंची पर्वत शृंखलाओं से घिरी है। इसके दक्षिण में पांगी धार है जो दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर कश्मीर की पीर पंजाल पर्वत शृंखला से जुड़ी है, इसकी समुद्रतल से ऊंचाई 18000 फुट से 19000 फुट तक है जबकि दर्रे 14382 से 16536 फुट की बुलंदी तक हैं। पांगी-धार भी स्थान-स्थान पर सदा बर्फ से ढकी रहती है। पांगी के उत्तर में जंसकर धार है। यह भी दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर फैली है। जंसकर धार को लांघकर जम्मू-कश्मीर की लद्दाख तहसील पड़ती है। जंसकर धार के हिमाच्छादित शिखर 21000 फुट की ऊंचाई तक फैले हैं। यह महा-हिमालय की पर्वत शृंखला है जबकि पांगी धार मध्य-हिमालय की पर्वत-माला की एक शाखा है। इस प्रकार पांगी मध्य-हिमालय में बसा एक पर्वतीय भू-भाग है। इसके पूर्व में लाहौल की सुरम्य भूमि है जबकि पश्चिम में जम्मू-कश्मीर का किश्तवाड़ क्षेत्र है जो कि ज़िला डोडा की एक तहसील है। जंसकर धार पर दुर्गम और ऊंचे दर्रे हैं जिन्हें पार कर यात्री लद्दाख की ऊंची मरुभूमि में पहुंचते हैं।

विस्तार

पांगी तहसील अतीत से ही रियासत चम्बा से जुड़ी थी। चम्बा के राजा छत्र सिंह (1664-90 ई॰) के समय इसका अधिकतम विस्तार देखा जा सकता है। उस समय पांगीधार की उस ओर का क्षेत्र पश्चिम में पाडर से पूर्व में लाहौल भूमि में चन्द्र और भागा नदियों के संगम तांदी क्षेत्र

तक फैला था। उसी राजा के समय लाहौल भू-भाग की सीमा कुल्लू के राजा के मध्य समझौता होने पर इस ओर खिसककर थरोट गांव तक निर्धारित हुई। जबकि पश्चिम में पाडर के स्थान पर एक किले का निर्माण हुआ जिसे छत्रगढ़ का नाम दिया गया। चम्बा गैज़ेटियर के अनुसार यह स्थान जंसकर और लद्दाख से होकर मध्य एशिया के व्यापार का केन्द्र रहा। मैदानों से इसका सम्पर्क नूरपुर, चम्बा और पांगी मार्ग से होकर रहा। मैदान के व्यापारी अपना माल नूरपुर-चम्बा-पांगी मार्ग से यहां पहुंचाते थे अतः यह स्थान मध्य एशिया के मार्ग पर (Emporium of Central Asian Trade) रहा (संदर्भ चम्बा गैज़िटियर पृष्ठ 130 टी. एस. नेगी.)। सन् 1820 ई॰ और 1825 ई॰ के मध्य रतनू नामक पालसर (Chief State official at Paddar) ने जंसकर क्षेत्र को भी लद्दाख राज्य से छीन कर चम्बा का करदाता बनाया परन्तु राजा चढ़त सिंह के समय (राज्य काल 1808 से 1844 ई॰) जम्मू-कश्मीर के राजा गुलाब सिंह के सेनापति जोरावर सिंह ने इसे ध्वस्त कर जम्मू-कश्मीर में मिला दिया तथा इस किले का नाम बदलकर गुलाब गढ़ रखा। तब से सन् 1836 ई॰ से पांगी की पश्चिमी सीमा सिकुड़कर संसारी नाला तक रह गई। लाहौल का भू-भाग चम्बा-लाहौल के नाम से राणा त्रिलोक नाथ के अधीन रहा जो राजा चम्बा का जागीरदार था। लाहौल का प्रबन्ध उनके अधीन था परन्तु पांगी एक वजारत थी। हिमाचल प्रदेश के निर्माण के बाद चम्बा-लाहौल को भी पांगी तहसील के अन्तर्गत लाया गया। 1984 ई॰ में लाहौल-स्पिति ज़िला बनने से पांगी तहसील की पश्चिमी सीमा पूर्व में राहौली तक सीमित हुई अतः पांगी तहसील की वर्तमान सीमा राहौली से संसारी नाले तक सीमित है।

नदियां

पांगी भू-भाग के मध्य में चनाव नदी अपनी द्रुतगति में पूर्व से पश्चिम की ओर गहरी घाटी में छलछलाती, उछलती-कूदती बहती नज़र आती है। यह इतनी गहरी घाटी में बहती है कि कहीं-कहीं इसका पानी भी नज़र नहीं आता। पांगी में इसका विस्तार लगभग 80 कि॰ मी॰ लम्बा है जहां इस नदी के साथ कई छोटे-छोटे नदी-नाले दोनों ओर से आकर मिलते हैं जिनमें बड़े-बड़े नाले इस प्रकार हैं—साच क्षेत्र के पास ही इसमें सेचू नाला गिरता है। सेचू नाला छोटे-छोटे तवान और चस्क नाले का

पानी अपने में मिलाकर सेचू गांव से साच क्षेत्र तक गहरी-पर्वतीय घाटी में बहता है। इसमें इतना जल है कि जंगलात के शहतीर इसी में बहाकर चनाव नदी में डाले जाते थे। सुराल नाला की ऊंची चोटियों का बरफानी पानी भी बहकर चनाव नदी में गिरता है। संसारी नाला का पानी भी इसी नदी में गिरता है। उधर पांगी धार के जल-स्रोत भी इसी में जल-संग्रह करते हैं।

यातायात

1947 ई॰ से पहले रियासत युग में यह क्षेत्र इतना दुर्गम था कि सारा सामान केवल मानव की पीठ पर लाद कर पांगी पहुंचाया जाता था। दूसरा साधन भेड़-बकरियां थीं जिन पर लाद कर सारा सामान और जिन्स पांगी पहुंचाई जाती थी। घोड़े और खच्चर तो उस समय वहां नहीं पहुंचते थे। पांगी के लोग साच दर्रे को लांघ कर चुराह तहसील के तरेला नामक स्थान पर पहुंचते थे। वहां अपना सामान बेच कर अपनी पीठ पर लाद कर अपने लिए आवश्यक सामग्री ले जाते थे। सभी मार्ग छः मास के लिए, ऊंचे पर्वतों पर बर्फ जमने के कारण बन्द रहते थे। सर्दियों में एक मार्ग नदी के साथ-साथ पश्चिम की ओर किश्तवाड़ से होकर खुला रहता था। पूर्वी मार्ग भी हिमाच्छादन के कारण सर्दियों में बन्द रहता था। यह मार्ग लाहौल से जुड़ा है। लाहौल साढ़े चौदह हज़ार फुट ऊंचे मार्ग रोहतांग से जुड़ा है जो सर्दियों में छः मास के लिए बन्द रहता है। इतना दुर्गम क्षेत्र होने के कारण यहां पहुंचना खतरे से खाली नहीं था अतः रियासत के समय नियम था कि जो कर्मचारी वहां तैनात किया जाता था या थोड़े समय के लिए वहां भेजा जाता था तो उसे Funeral Expenses के नाम से विशेष भत्ता दिया जाता था ताकि वापस आने या न आने की सम्भावना से उसे सतर्क रखा जाये।

दर्रे

चन्द्र भागा घाटी (पांगी) में पांगी धार से होकर पहुंचने के लिए निम्नलिखित दर्रे हैं–

साच पास	=	14478 फुट
मढु	=	14100 फुट
काली छो	=	15765 फुट

कुगति	=	16536 फुट
चनेनी	=	14382 फुट
द्राटी	=	15491 फुट
चोभिया	=	16447 फुट

साच दर्रे के लिए मार्ग चम्बा से बैरागढ़ या तरेला से होकर है। आजकल बैरागढ़ तक सड़क बस योग्य है अतः वहां तक यातायात में परिवहन की सुविधा है। तरेला भी बस-मार्ग पर पड़ता है। बैरागढ़ या तरेला से सतरुंडी पास के दामन में ठहरने के लिए निर्जन स्थान है जहां एक छोटा सा सरकारी विश्राम गृह है। जनसाधारण के ठहरने के लिए यहां निजी प्रबन्धकों से विश्राम के लिए टैंट मिल जाते हैं। पांगी जाने वाले यात्री रात को यहां ठहरते हैं। यहां से प्रातः लोग पांगी के लिये पैदल यात्रा आरम्भ करते हैं। यहां से पास की दूरी तीन मील है। पास प्रायः अधिकांश समय तक बर्फ से ढका रहता है। पास पर एक देवी का छोटा-सा मन्दिर है। अब यहां से परली और पांगी क्षेत्र आरम्भ होता है। पास से होकर अब खच्चर मार्ग बन गया है। उतराई के मार्ग में प्रायः कुछ मील तक बर्फानी मार्ग तय करना पड़ता है। रास्ते में बगोटु, दुनई और विंद्राबनी विश्राम स्थल हैं। केवल विंद्राबनी में ही विश्राम गृह की सुविधा है। दुनई में भी एक छोटा-सा सरकारी विश्रामगृह है। बगोटु में निजी प्रबन्धकों के टैंट तथा खाने-पीने की सुविधा है।

सतरुंडी की तरह परली तरफ से आने वाले यात्रियों के लिए दर्रे के दामन में विश्राम स्थल हैं। कुछ यात्री रात को सतरुंडी पहुंचते हैं जहां बगोटु की तरह ही खान-पान की सुविधा उपलब्ध है। दुनई तक अब परिवहन की सुविधा उपलब्ध हो गई है। किलाड़ जो कि पांगी का मुख्यालय है, से परिवहन की जीप यहां तक लगभग 20 कि॰ मी॰ की परिवहन की सुविधा उपलब्ध कराती है। पांगी में आंतरिक सुविधा के लिए हि॰ प्र॰ सरकार की ओर से दो जीपों को हैलिकप्टर से गिराया गया था (पहुंचाया गया) ताकि अन्दरूनी भाग में परिवहन सुविधा मिल सके।

काली छो

काली छो पास भरमौर के तुंदाह क्षेत्र से होकर है। इस मार्ग से चलकर यात्री लाहौल के त्रिलोकनाथ नामक प्रसिद्ध धार्मिक स्थल पर

पहुंचते हैं। यहां से वे पांगी के लिए चन्द्रभागा नदी के साथ-साथ राहौली पहुंचते हैं। राहौली (रौहली) तक अब कुल्लू-मनाली से सीधी परिवहन सुविधा उपलब्ध है। हाल ही में यह सुविधा पांगी के गांव पुर्थी तक उपलब्ध हो गई है।

आगे किलाड़ की ओर केन्द्रीय सरकार की ओर से सड़क निर्माण का कार्य युद्ध स्तर पर लगा है। निकट भविष्य में परिवहन व्यवस्था किलाड़ तक सम्भव हो जायेगी। यहां से किलाड़ लगभग चालीस कि. मी. है। मार्ग चन्द्रभागा नदी के साथ चलता है।

कुगति पास

कुगति पास सबसे ऊंचा पास है जो भरमौर-कुगति मार्ग से होकर ऊंची हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाओं से होकर जाता है। यहां से चलकर लाहौल के तांदी नामक स्थान पर मोटर सड़क पर पहुंचते हैं।

चोभिया दर्रा

यह कठिन दर्रा है। प्रायः भेड़पालक अपने रेवड़ को इस मार्ग से ले जाते हुए लाहौल की चरागाहों में पहुंचते हैं।

द्राटी दर्रा

द्राटी मार्ग चम्बा के साहो क्षेत्र की ऊंची पर्वत मालाओं में है। यहां से चल कर यात्री लाहौल के तिंदी (उदयपुर के पास) नामक गांव में पहुंचते हैं।

चनैहणी दर्रा

यह दर्रा चुराह तहसील के देवी—कोठी गांव से होकर है। देवी-कोठी के सामने यह पर्वत सिर ऊंचा किये खड़ा दिखाई देता है। यात्री यहां से चलकर मिंधला गांव में पहुंचते हैं। जम्मू-कश्मीर की ओर से अब परिवहन सुविधा पांगी-सीमा के नज़दीक पहुंच गई है।

हवाई सुविधा

अब पांगी क्षेत्र के लिए हैलीकाप्टर सुविधा भी उपलब्ध है। मास में एक-दो बार हैलीकाप्टर पठानकोट से पांगी धार के वायु मार्ग से किलाड़ के लिए उड़ान भरता है।

दूसरी ओर कुल्लू से भी इसी प्रकार की हवाई सुविधा उपलब्ध है। मांग और आवश्यकता पर तुरन्त हवाई सुविधा उपलब्ध करायी जाती है।

जंसकर धार के दर्रे

बहुत से देशी और विदेशी पर्यटक इन दर्रों का लाभ उठाते हैं। ये दर्रे सुराल घाटी और सेचुनाला से होकर हैं। यात्री तीन दिन लगातार पैदल चलकर लद्दाख क्षेत्र में पहुंचते हैं। सुराल से चलकर शिव शंख और काग दर्रे लांघे जाते हैं। जबकि सेचुनाला से तवान पास को अबूर करना पड़ता है। इन दर्रों का उपयोग केवल साहसी यात्री ही करते हैं। मार्ग प्रदर्शन के लिए स्थानीय लोग मिल जाते हैं।

ये दर्रे पांगी धार के दर्रों से अधिक ऊंचे हैं। कहीं-कहीं तो सारा वर्ष न पिघलने वाली बर्फ पर चलना पड़ता है।

पांगी भू-भाग में बसे गांव

पांगी भू-भाग में पंद्रह पंचायतें और कुल 65 गांव हैं। गांव प्रायः चन्द्रभागा नदी की दोनों ओर बसे हैं। किलाड़ पांगी का मुख्यालय है। यह समुद्रतल से 8411 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। यहां उपमण्डल अधिकारी तथा अन्य कार्यालय हैं। माध्यमिक वरिष्ठ विद्यालय और सरकारी हस्पताल हैं।

अन्य पंचायतें इस प्रकार हैं–

1. पंचायत सुराल–गांव कनवास, गणमस, रुसमुस, ताई, सुराल भुटोरी, सुराल
2. पंचायत धरवास–धरवास, चलोल, कुठाह
3. पंचायत लुज–लुज, मंगलवास
4. पंचायत कुमार–कुमार, गुआडी और परमार भुटोरी
5. पंचायत साच–साच, पिंडरु, डुमाडे, कुठल, घिसल
6. पंचायत क्रियूणी–कोठी, सेरी
7. पंचायत किलाड़–थमोह, चौकी, महलियत, टकवास, कुफा, टुडु, हुडान भुटोरी, परमस, क्रोनि
8. पंचायत करेल–करेल, क्वास, पुंटो, परधवाल
9. पंचायत करयास–धनवास, माझल, गगीत, गोस्ती, झलवास, टटन
10. पंचायत साहली–साहली, हिलोर, धनाला, मिछम, लियु
11. पंचायत सेचु–सेचु, हुडाण, मौझी, चस्क, चष्कभुटोरी, मुर्छे
12. पंचायत शूणा–शूण, उदीण, हिलुटॉन

13. पंचायत मिंधल—मिंधल, पिंडरुपाल, वणनियु, कुलाल

14. पंचायत रैई—रै

15. पंचायत पुर्थी—पुर्थी, चांदल, अजोग, छाओ, शौर

पांगी के इन गांवों की जनसंख्या सन् 1981 की जनगणना के अनुसार 12256 है जबकि 1991 ई॰ में जनसंख्या 14960 तक पहुंची है। पांगी का क्षेत्रफल 1600.5 वर्ग कि॰ मी॰ है। सबसे कम ऊंचाई वाला गांव लुज में मंगलवास है जिसकी समुद्रतल से ऊंचाई 6000 फुट से भी कम है। सबसे अधिक ऊंचाई पर बसा गांव चस्क भटोरी (Chask Bhutori) है जिसकी समुद्रतल से ऊंचाई 3922 मीटर है।

मखमली चरागाहें

पांगी क्षेत्र चरागाहों के लिए मशहूर है। ऊंची चोटियों पर ढलानदार सुन्दर चरागाहें हैं जिन पर चुराह और रावी घाटी के चरवाहों की भेड़ और बकरियां एक से डेढ़ मास के लिए चुगती हैं। ऊंचे पर्वतों पर पंगवाल लोगों की अधवारियां (पशु चराने के स्थान पर दूसरा घर और खेती के लिए ज़मीन) हैं जहां वे सावन और भादों मास में अपने पशुओं के साथ वहां रहते हैं। चरागाहों पर उगी घास ताकतवर समझी जाती है। कहीं-कहीं भेड़-बकरियों के लिए गाहर (विशेष चरागाहें) भी हैं जिनके चराने के लिए अनुज्ञा (Permit) जंगलात विभाग देता है।

वन-सम्पदा

पांगी क्षेत्र की जलवायु सर्द और शुष्क है परन्तु यहां का प्राकृत सौंदर्य देखे नहीं बनता। उच्च शिखर सुन्दर और मनोहारी हरे-भरे वन वृक्षों से भरे पड़े हैं। ऊंचे शिखरों पर सुन्दर मखमली चरागाहें हैं, जो मन को लुभाती हैं। पांगी की चन्द्र भागा घाटी में दयार, कैल, तोष, पहाड़ी पोपलर, विल्लो (Willow) और अत्यन्त ऊंचे स्थान पर भोज पत्र के वृक्ष बहुतायत से उगते हैं। अन्य फलदार वृक्षों में अखरोट (Walnut), चैस्टनट (Chestnut), ठांगी (Hazelnut), चिलगोज़ा (Pinus-geradiana) इत्यादि के वृक्ष जंगल में अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

इसके अलावा यहां कीमती जड़ी-बूटियों की भरमार है, जो यूं हैं—रत्न जोत, कुठ, वन-ककड़ी, पतीश (कड़वा), पतीश (मीठा), वनचोक, काला जीरा, सेन्सी, मरुआ, कौड, सालम पंजी, गुच्छी, धूप आदि।

वन पशुओं में पिज (Wild sheep), मही (Wild-goat), कर्थ (Male of wild-goat), रौंस, काला भालू, भूरा भालू, बाघ इत्यादि, वन पक्षियों में अन्य पक्षियों के साथ मोनाल ऊंचे पर्वतों में पाया जाता है।

पालतू पशु

पालतू पशुओं में भेड़, बकरी, गाय, बैल तथा सुरा गाय हैं। सुरा गाय (चूंरी) के लिए यहां की जलवायु उपयुक्त है। यातायात में सुधार के बाद जर्सी नस्ल के पशुओं के लिए यहां की जलवायु उपयुक्त है। इसके साथ लगते क्षेत्र लाहौल में जर्सी गाय पाली जा रही है। यहां भी इस नस्ल के पशु पाले जा रहे हैं।

फसलें

इस भू-भाग में अधिकतर केवल एक ही फसल ली जाती है परन्तु धरवास और लुज क्षेत्र में, जो कम ऊंचे हैं, कहीं-कहीं दो फसलें ले ली जाती हैं। धरवास और लुज क्षेत्रों में मक्की की अच्छी फसल ली जाने लगी है। यहां सेब के बगीचे भी लगाये गये हैं जो बढ़िया सेब देने लगे हैं। अन्य क्षेत्रों में जौ, एलो, गेहूं, चणिया, फाफरा, फुल्लन, भरेस, बजर भंग (स्थानीय बोली में कुना) सियुल इत्यादि की फसलें उगाई जाती हैं।

बहुत ऊंचे क्षेत्रों जैसे सुराल भटोरी, हुण्डान-भटोरी, चस्क भटोरी आदि क्षेत्रों में एलो की फसल अधिक उगाई जाती है। आलू भी यहां की बढ़िया फसल है। आलू तमाम पांगी घाटी में उगाया जाता है।

अब लोग कड़म, गोभी और अन्य सब्जियां भी उगाने लगे हैं। गर्मियों में लोग अपनी उगाई सब्जियों का प्रयोग करते हैं।

खनिज पदार्थ

पांगी घाटी में कई प्रकार के खनिज पदार्थ पाये जाते हैं परन्तु वे इतनी कम मिकदार में हैं कि उनका खनन शायद लाभदायक नहीं है। भरमौर के गांव घुढैठ की तरह यहां भी स्थानीय ज़रूरत के लिए लोग लोहे के औज़ार स्थानीय लोहे से ही बनाते थे। अब न तो यहां और न ही भरमौर में ऐसी प्रथा है। पांगी के धरवास क्षेत्र में अभ्रक काफी मात्रा में पाया जाता है। स्थान-स्थान अभ्रक के टुकड़े गिरे मिलते हैं। परन्तु अभी तक यह अनुसंधान नहीं किया गया कि यह कितनी मात्रा में है और इसके खनन से क्या लाभ मिल सकता है? शायद यातायात सुधर

जाने के बाद ही इस प्रकार की आवश्यकता अनुभव की जायेगी। ऐसा भी अनुमान लगाया जाता है कि पांगी में नीलम मिलने की संभावनाएं हो सकती हैं। पांगी के पड़ोसी क्षेत्र पाडर में सन् 1880 ई. में नीलम की खान की स्थापना की गई जो जम्मू-कश्मीर सरकार के अधीन खनन प्रक्रिया में है।

धरवास का तिल्ल-मिल्ल चश्मा

पांगी के धरवास नामक गांव में अभ्रक युक्त पानी का प्रसिद्ध चश्मा है जो टी. बी. के मरीजों के लिए स्वास्थ्य-वर्धक माना जाता था। उस समय जब टी. बी. का कोई इलाज नहीं था लोग इस पानी पर आधारित रहते थे। यह गांव के समीप ही मुख्य सड़क पर है।

पांगी का प्राकृतिक विभाजन

1. लुज और धरवास क्षेत्र पांगी के कम ऊंचे क्षेत्र हैं। यहां अन्य स्थानों की अपेक्षा बर्फ कम पड़ती है। कम ऊंचे होने के कारण अन्य स्थानों की अपेक्षा गर्म भी है। यहां मक्की की बढ़िया फसल होती है। खेत भी उपजाऊ हैं। हर दूसरे या तीसरे वर्ष खेत में दो फसलें ली जाती हैं। यह क्षेत्र समुद्र तल की ऊंचाई पर है। आस-पास जंगलात भी काफी हैं।

2. किलाड़ क्षेत्र समुद्रतल से आठ हज़ार फुट से अधिक ऊंचाई पर स्थित है अतः मक्की की फसल सम्भव नहीं है। खेत भी अपेक्षतया कम उपजाऊ हैं। केवल एक फसल ही सम्भव है।

3. साच-सेचूनाला-पुर्थी-शौर क्षेत्र यद्यपि अधिक ऊंचाई पर स्थित हैं परन्तु घने जंगल से भरे पड़े हैं। प्राकृतिक दृश्य अनुपम है।

4. भटोरियों में सुराल भटोरी, हुण्डान भटोरी, परमार भटोरी, चस्कभटोरी और तवानभटोरी है। ये सभी क्षेत्र नौ हज़ार फुट से बारह हज़ार से भी अधिक ऊंचाई पर स्थित हैं अतः यहां अधिकांश भोजपत्र के वृक्ष सम्भव हैं। चरागाहें अधिक हैं। आलू, एलो, जौ और गेहूं की फसलें सम्भव हैं। इनमें सुराल घाटी प्राकृतिक तौर पर अत्यन्त सुन्दर है। यहां भटोरी को छोड़कर अन्य पंगवालों के गांव भी स्थित हैं। यहां भोजपत्र को छोड़कर अन्य वृक्ष छोटे कद के हैं।

पंगवाल

सदियों पहले पांगी कितना दुर्गम क्षेत्र था। वहां पहुंचना ही जोखिम का काम था। वहां का इतिहास क्या रहा होगा इसका अनुमान लगाना कठिन है। फिर भी कुछ शिलालेखों, किंवदंतियों और प्रथाओं से पांगी के इतिहास का अनुमान लगाया जा सकता है। कुछ बिखरे हुए प्रमाण हैं जिन्हें जुटाकर पांगी के इतिहास के पृष्ठ खुलते हैं। अन्य स्थानों की तरह रजवाड़ो से पूर्व यहां भी आप-ठाकरी का जमाना रहा होगा जैसे कि वर्ण-व्यस्था से स्पष्ट होता है। कुछ किंवदंतियां हैं कि पंगवाल जनजातीय लोग पड़ोसी स्थानों से प्रवासित होकर यहां बसे।

शिला लेख

पांगी के इतिहास पर पांगी में मिले दो शिलालेख महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं--इनमें एक शिलालेख पांगी के गांव लुज में है और दूसरा पांगी के ही साहली नामक स्थान पर है।

लुज का शिलालेख

लुज पांगी क्षेत्र में किलाड़ से लगभग 20 कि॰ मी॰ के फासले पर किलाड़ के पश्चिम की ओर एक गांव है। उस गांव के लगभग 2 कि॰ मी॰ के फासले पर ऊबड़-खाबड़ झाड़ियों के बीच में, खेत के किनारे पर एक शिलालेख पड़ा है जो अब आधा ज़मीन की मिट्टी में धंस चुका है। इसके ऊपर एक शिलालेख लिखा है जो अत्यन्त दयनीय दशा में होने पर धुंधला पड़ चुका है। पहले तो झाड़ियों से वहां पहुंचना ही कठिन है फिर लुज के प्रधान श्री सूरदास ने लेखक को झाड़ियों के मध्य से वहां पहुंचाया। पुराने ज़माने में, जब यह पनघट शिला-स्थापित हुई थी, उस समय यहां पानी का पनिहार था, गांव भी बसा था, लेकिन अब वहां कुछ दूरी पर एक ही घर है। यह शिला एक ऐतिहासिक स्मारक और प्रमाण है जिसकी रक्षा अपरिहार्य है अन्यथा कुछ ही समय में यह दुर्लभ कृति नष्ट हो जायेगी।

इस शिलालेख को एंटिक्वीटीज़ ऑफ चम्बा में उद्धृत किया गया

है। इसे उस समय के किसी कारदार या राणा ने स्थापित किया था। इसमें चम्बा के राजा जष्ट वर्मन् के सिंहासनारूढ़ होने के वर्ष का प्रमाणित वर्णन हुआ है। इस शिलालेख में स्पष्ट वर्णन है कि यह शिला राजा जष्ट वर्मन् के सिहांसन पर बैठने के प्रथम वर्ष के समय स्थापित की गयी। स्थापना वर्ष शास्त्र सम्वत्-81 दिया है जिसकी कालगणना के अनुसार ई॰ सन् 1105 बैठता है। इस वर्ष से चम्बा के राजाओं की काल गणना ठीक से होने लगी अतः स्पष्ट हुआ कि राजा जष्ट वर्मन् सन् 1105 ई॰ को गद्दी पर बैठे थे, उस समय पांगी के लुज गांव तक राजा चम्बा का शासन था।

साहली का शिलालेख

गांव साहली पांगी के परगना साच से 14 कि॰ मी॰ के फासले पर स्थित है। यहां भी पानी के पनिहार पर एक पुरानी पनघट शिला है जो अत्यन्त अद्भुत है। शिला के ऊपरी भाग पर देवताओं की एक पंक्ति है जो अत्यन्त आकर्षक ढंग से उकेरी गयी है। आकृतियां अब भी स्पष्ट और सुन्दर लगती हैं—देवताओं में शिव, कार्तिकेय, इन्द्र और गणेशादि खुदे हैं। निचली पंक्तियों में कलश लिये भारत की विभिन्न नदियां हैं। आकृतियां कलात्मक ढंग से खुदी हैं। प्रत्येक को अपने वाहन के साथ दिखाया गया है तथा उनके ऊपर उन नदियों के नाम लिखे हैं।

नीचे शिलालेख दिया है जिसे सन् 1905 में पढ़ (Decipher) कर Anti-quities of Chamba में उद्धृत किया है। जिससे पता लगता है कि यह पनघट शिला राजा ललित वर्मन् के राज्यकाल के सत्ताईसवें वर्ष में स्थापित हुई। स्थापना वर्ष शास्त्र सम्वत् 46 दिया है जो उस समय चम्बा राज्य में प्रचलित था अतः काल गणना करने पर ललित वर्मन् का राज्य काल सन् 1143 ई॰ बैठा और उसका सत्ताईसवां वर्ष 1170 बैठा अतः यह शिला सन् 1170 ई॰ में वहां के राणा लुदरपाल ने स्थापित की थी। उस शिला में पांगी का नाम पंगति था स्थानीय भाषा में लोग पैंगइ कहते हैं।

इन शिलालेखों से यह भी स्पष्ट पता लगता है कि पांगी भी प्राचीनकाल में पालवंशी राणाओं के अधीन थी। ये पालवंशी राणा अब भी उस गांव में रहते हैं। लेखक को उनसे वार्ता करने से पता लगा कि

उस पनघट शिला का अब भी वे पूजन करते हैं। देवताओं के मुख पर घी से पूजन के स्पष्ट चिह्न दिखाई देते थे। दो नदियों की नीचे से आकृतियां टूटकर नीचे गिर पड़ी हैं जिससे आसार नज़र आते हैं कि यह शिला भी किसी दिन नष्ट हो जायेगी। इसकी सुरक्षा भी अपेक्षित है। पानी यहां सूख चुका है। अब जलस्रोत इस शिला की कुछ दूरी पर ही है। गांव नज़दीक है अतः वे अपने कुल की कृति की रक्षा कर रहे हैं लेकिन फिर भी इस ऐतिहासिक धरोहर की रक्षा ज़रूरी है।

चम्बा की ऐतिहासिक शृंखलाओं में वर्णन मिलता है कि चम्बा के राजा विजय वर्मन् ने उस समय मैदानों में फैली अराजकता को देख कश्मीर और लद्दाख पर आक्रमण कर वहां से बहुत-सा धन लूटा। विजय वर्मन् का राज्यकाल सन् 1175 ई. से आरम्भ होता है। ऐसा अनुमान है कि उन्होंने पांगी से होते हुए ही लद्दाख पर आक्रमण किया होगा।

राजा पृथ्वी सिंह (सन् 1641-1664 ई.) अपने पिता जनार्दन की मृत्यु के बाद दाई की होशियारी के कारण राजा मण्डी के संरक्षण में रहे क्योंकि राजा जनार्दन सन् 1613 ए. डी. को नूरपुर के राजा जगत् सिंह द्वारा अपने ही महल में मारे गए। बटलो दाई ने नवजात शिशु को अज्ञात दशा में महल से निकाल कर राजा मण्डी के संरक्षण में पहुंचाया। वह वहीं पलकर बड़ा हुआ। बड़ा होने पर राजा मण्डी की सैनिक सहायता से वह कुल्लू होते हुए रोहतांग दर्रे को लांघकर पांगी पहुंचा। मिंधला में चंडी भगवती से वरदान प्राप्त किया। देवी को ताम्र-पत्र पर शासन दिया तत्पश्चात् चनैनी दर्रे को लांघकर चुराह होते हुए चम्बा राज्य को पुनः जीत कर प्राप्त किया। इस प्रकार पांगी क्षेत्र को वे व्यक्तिगत सम्पर्क होने से जानते थे। ऐसा वर्णन मिलता है कि पांगी वजारत उस समय बटलो दाई के पुत्र बाजो की वज़ीरी में थी। बटलो दाई के दो पुत्र थे, आजो और बाजो। इस राजा ने पांगी क्षेत्र में अपने कारदार नियुक्त कर राणाओं को पदच्युत किया।

कारदार-कोठियां बनाईं इसके पश्चात् उनके उत्तराधिकारी राजा छत्र-सिंह (राज्यकाल 1664-1690 ई.) ने पांगी में अपना शासन, वहां के राणाओं को हराकर, पाडर तक पहुंचाया तथा मैदानी भूभाग में एक किले का निर्माण किया। इस दुर्ग का नाम छत्रगढ़ रखा तथा इस क्षेत्र में अपने

कारदार रखे। इस क्षेत्र के महत्व का वर्णन ऐतिहासिक परिवेश में किया जा चुका है। राजा चढ़त सिंह (1808-1844 ई.) के समय जंसकर रणांत भी सन् 1820-25 को चम्बा राज्य के अधीन आ गई। इस समय तक जंसकर का शासक लद्दाख का करदाता था। सन् 1835-36 के डोगरा आक्रमणों के कारण पाडर और जंसकर राजा जम्मू-कश्मीर के अधीन हो गए। उस समय से ये भाग जम्मू-कश्मीर के अधीन ही रहे। छत्रगढ़ का नाम गुलाबगढ़ रखा गया।

इन ऐतिहासकि घटनाओं से पता लगता है कि पांगी प्राचीनकाल में राणाओं और ठाकुरों के अधीन रही। यह राणे और ठाकुर भी आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। किलाड़ में एक गांव माहलियत नाम से जाना जाता है। यह गांव राणा मल्हा ने बसाया था।

राणा मल्हा पांगी के पश्चिमी पड़ोसी भू-भाग भद्रवाह से अपने 26-27 सैनिक और सहायक जत्थे के साथ आया था। उसने वहां अपना महल बनाया उसे माहलियत गांव से जाना जाता है। उससे पहले किलाड़ क्षेत्र में एक ठाकुर शासन किया करता था। राणा मल्ह और ठाकुर में आपस में वैमनस्य था जिसकी जन-श्रुतियां अब भी लोगों में प्रचलित हैं। इससे गुत्थी और भी सुलझती है कि हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी भागों में ठाकुरों का शासन राणाओं से पहले था। राणाओं की वंश-परम्परा से ज्ञात होता है कि वे मैदानी भागों के विभिन्न क्षेत्रों से पहाड़ों में आये।

अन्य जनजातियों की तरह पंगवाल भी एक अनुसूचित-जनजाति घोषित है। सीधे शब्दों में पांगी निवासी पंगवाल-जनजातीय हैं, वह चाहे किसी भी वर्ण से सम्बन्धित हों। पंगवाल निवासियों में भोट जनजातीय लोग भी हैं जो पांगी के ऊंचे-ऊंचे क्षेत्रों में रहते हैं। उनके गांवों को भौटोरी (भटोरी) कहते हैं पांगी में रहने वाले भोटों को पंगवाल-भोट की संज्ञा भी दे सकते हैं—इस जनजाति के लोग काफी कम संख्या में हैं अतः उन्हें वहां अल्पसंख्यक कह सकते हैं। उनकी अपनी भोटी भाषा है। वे बौद्ध हैं।

वर्ण व्यवस्था

पंगवाल राजपूत, ठाकुर, राठी और ब्राह्मण हैं। ये जातियां अनुसूचित जनजातियां हैं जबकि आर्य और लोहार अनुसूचित जातियां हैं। प्रथम वर्ग

आपस में बिना किसी भेदभाव से विवाह-शादियां करते हैं। ब्राह्मण लोग राजपूत, राठी, ठाकुर की लड़कियां ब्याह लेते हैं। जबकि राजपूत, राठी, ठाकुर, ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर लेते हैं।

सन्तान की जाति पिता की जाति पर आधारित होती है। राणा और अन्य उच्च राजपूत भी इसी तरह अन्य जातियों की कन्या विवाह लेते हैं और अपनी बेटियों के रिश्ते उनसे करने में कोई बुराई नहीं समझते जबकि अन्य स्थानों के उच्च वर्णीय राजपूत अन्य जातियों से अपने विवाह सम्बन्ध रखने में हिचकिचाते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण पांगी का दुर्गम स्थान होना है।

पांगी निवासी को बाहर से रिश्ता मिलना भी दुर्लभ ही था। अनुसूचित जनजाति के लोग अनुसूचित जाति से पका खान-पान स्वीकार नहीं करते। यही प्रथा भोट जनजातियों के साथ भी प्रचलित है। भोट अपने समाज में ही रोटी-बेटी का सम्बन्ध रखते हैं। पंगवाल अनुसूचित जाति में आपसी सम्बन्धों के होते हुई भी जाति प्रथा है। सन्तान की जाति अपने पिता की जाति पर आधारित होती है अतः वर्ण-व्यवस्था यथावत् बनी आ रही है।

आर्य और लोहारों के आपस में रिश्ते होते हैं। खान-पान भी आपस में होता है। राजपूत प्रायः चन्द्रवंशी हैं। राजपूतों में राणा, राठी और ठाकुर हैं। राणा पाल वंश से भी सम्बन्ध रखते हैं।

ब्राह्मण मार्कण्डेय और कश्यप गोत्र के हैं। पांगी में प्रायः राजपूतों की संख्या अन्य जातियों से अधिक है। किलाड़ के कुप्फा और थमोह गांव में भी ब्राह्मणों की अपेक्षा राजपूतों की संख्या अधिक है।

पंगवालों का मूल स्थान

पंगवाल जनजाति के मूल स्थान के विषय में लोगों की भिन्न धारणाएं हैं। यह तो सर्वमान्य है कि हर जाति एक स्थान पर नहीं रहती। परिस्थितियां बदलती रहती हैं। उसके अनुसार स्थायी निवासी अपना मूल स्थान छोड़कर कोई अन्य स्थान ढूंढ लेते हैं। प्राकृतिक उथल-पुथल या जातीय दंगे किसी भी जाति या कुनबे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए बाधित करते हैं।

जनसंख्या का बढ़ना भी स्थान विशेष के लोगों को अन्य स्थान पर

निर्वासित होने के लिए विवश करता है। पंगवाल एक विशेष प्रकार की कपास के कपड़े की बनी सफेद टोपी पहनने के आदी हैं अतः कई विचारकों ने यही अनुमान लगा लिया कि पंगवाल लोगों के पुरखा राजा चम्बा द्वारा सज़ाए-आफता लोग होंगे जिन्हें निर्वासित कर पांगी के उस समय निर्जन स्थान पर काले पानी की सजा दे कर भेज दिया होगा।

विचारकों की दूसरी धारणा है कि वे साथ लगे क्षेत्र लाहौल से निर्वासित होकर यहां आए होंगे।

तीसरी धारणा यह है कि पंगवाल जनजाति का मूल स्थान कश्मीर में कहीं किश्तवाड़ादि क्षेत्र है। पंगवाल जनजाति की समृद्ध संस्कृति पहली धारणा को तर्कसंगत नहीं ठहराती। पंगवाल जनजाति की अपनी विशेष संस्कृति है जो समुदाय विशेष की द्योतक है। कुछ एक निर्वासित व्यक्तियों के आने से इस प्रकार का संगठित समाज न बनता।

दूसरी धारणा भी तर्कसंगत इसलिए नहीं लगती कि पंगवाल जनजाति के नक्श लाहौल के मंगोलाइड चेहरे से भिन्न हैं। लाहौल में अधिक संख्या बढ़ने से लोग पश्चिम के बजाय पूर्व की ओर बढ़ते हैं। जैसे आर्य लोगों के विषय में धारणाएं हैं कि वे बढ़ते-बढ़ते मध्य एशिया से भारत पहुंचे।

तीसरी धारणा कुछ तर्कसंगत लगती है क्योंकि लोगों में भी इस प्रकार की अनुश्रुतियां हैं कि जब मुसलमान बादशाह हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिए बाध्य कर रहे थे तो लोग यज्ञोपवीत की रक्षा के लिए दुर्गम स्थानों की ओर भागे।

कुछ तो प्रमाण भी मिलते हैं। कहा जाता है कि मल्हा नामक राणा अपने सत्ताईस सैनिक सहायकों को लेकर किलाड़ पहुंचा। वह जिस गांव में रहने लगा उस गांव का नाम भी महलियत पड़ा। वह वहां का शासक बन बैठा। कुफ्फा गांव में पहले से एक ठाकुर शासक था। उन दोनों में आपसी वैमनस्य की कथाएं अब भी लोगों से सुनी जा सकती हैं।

इन कथाओं का वर्णन सम्बन्धित अध्यायों में इसी ग्रंथ में कहीं अन्यत्र किया जायेगा। पंगवाल जनजाति का गौरवर्ण और तीखे नक्श इसी धारणा के पक्षधर हैं। कुछ ब्राह्मण परिवारों का कथन है कि उन्हें

राजा चम्बा ने मिंधला भगवती की पूजा-अर्चना के लिए पांगी भेजा। वे पांगी की सुरम्य भूमि में ही बस गए।

इससे पूर्व प्राचीन युग में कुछ अनार्य जातियां भी यहां रहती होंगी। ऐसा विश्वास है कि यहां राक्षसों का बोल-बाला था। टुंडा राक्षस और अन्य राक्षसों की कथाएं लोगों की ज़बान पर हैं जिनका विस्तार से वर्णन सम्बन्धित अध्याय में किया जायेगा।

ऐसा तो प्रमाणित है कि यह स्थान कहीं-कहीं ही आबाद था। जनसंख्या इतनी कम थी कि कई क्षेत्र निर्जन थे। सन् 1881 ई॰ को पांगी की कुल जनसंख्या 4874 बताई गई है–

इसका क्षेत्र विशेष का ब्योरा–

धरवास	=	747
किलाड़	=	1346
साच	=	1417
लाहौल	=	1364
कुल	**=**	**4874**

यदि उस समय की लाहौल की जनसंख्या 1364 को निकाल दें (4874-1364 =3510) तो उस समय की पांगी की जनसंख्या 3510 रह जाती है जो पूरे सौ वर्ष के बाद सन् 1981 की जनगणना के अनुसार बढ़कर 12256 हो गई। 1991 ई॰ में यह बढ़कर 14960 हो गई।

इस क्षेत्र में सन् 1881 ई॰ में इतनी थोड़ी जनसंख्या थी तो कई वर्ष पूर्व 1105 ई॰ को राजा जष्ट वर्मन् के समय जब यह भू-भाग उस समय राजा चम्बा के अधीन था और राणाओं और ठाकुरों के शासन में लुज और साहली जैसे स्थानों में ऐतिहासिक शिलालेख लिखे गए और पनघट शिलाएं स्थापित की गईं, कितनी होगी। गांव साहली की शिला का शिल्पकार और मूर्तिकार तो कोई विशेष कलाकार ही होगा जिसने इतनी अद्भुत कृति बनाई।

Cencus Survey Report में वर्णन मिलता है कि पांगी के विषय में केवल एक मिसले हकीकत मिली है जिसमें वर्णन मिला है कि थमोह गांव में मार्कण्डेय ब्राह्मण का केवल एक ही खेत था। बाकी खेत बाद में बने।

इससे ज़ाहिर होता है कि पांगी में प्राचीन समय में जनसंख्या कहीं-कहीं ही थी। शेष जंगल ही जंगल थे। जंगल अंग्रेजों के समय कटने शुरू हुए जब 1881 ई. को जनगणना करने पर 2471 मजदूर और कर्मचारी पंगवाल मजदूरों के अलावा जंगल में कार्यरत थे। तब से अब तक अबाध गति से जंगलों का कटान होता रहा।

पंगवाल जनजाति के अलावा भोट जनजाति के विषय में लोगों का विश्वास है कि सर्वप्रथम वे करयास गांव में बसे। बाद में वे अपनी अलग-अलग भटोरियां बनाकर रहने लगे। उनके विषय में लोगों का विश्वास है कि वे सर्वप्रथम भूटान से आए अतः भोट कहलाए।

यह अभी खोज का विषय है कि कश्मीर के किस क्षेत्र से इन लोगों के रीति-रिवाज़ और भाषा मिलती है। वेश-भूषा, वंश परम्परा और गोत्र अनुसंधान में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

भोट

पांगी की भोट जनजाति अपनी अलग बस्तियों में रहती है। पंगवालों से उनके सामाजिक-सम्बन्ध नाता-रिश्ता और रोटी-बेटी का विशेष सम्बन्ध नहीं है। वे अलग से अपनी बस्तियों में रहते हैं जिन्हें प्रायः स्थानीय लोग भुटोरियां कहते हैं। प्रायः भुटोरियां पंगवाल गांव से काफी दूर हैं। वे माल-मवेशी अधिक पालते हैं अतः चरागाहों के समीप रहते हैं। दूसरे शब्दों में वे अधिक ऊंचाई के क्षेत्र में रहते हैं। पांगी स्वयं ही अधिक ऊंचाई पर स्थित है। जिस पर वे लोग और भी ऊंचे और ठंडे स्थान पर रहते हैं। उनकी भुटोरियों की समुद्र तल से ऊंचाई 8000 से 10500 फुट तक है अतः ऐसे स्थानों पर वही फसलें उगती और फलती-फूलती हैं जो अधिक ठंड का सामना कर सकें। ऐसी फसलों में एलो (एक प्रकार का जौ) जो आमतौर पर शराब निकालने के काम आता है, आलू और गंदम होती है। ज़मीन प्रति व्यक्ति बहुत कम है अतः पैदावार सारे वर्ष के लिए काफी नहीं होती। फुल्लन और भरेस (ओगला और फाफरा) की फसलें भी उगाई जाती हैं। इतनी ऊंचाई पर फलदार वृक्ष नहीं पाये जाते। प्राकृतिक जड़ी-बूटियां अधिक पाई जाती हैं। लोग पशुओं के लिए घास अगस्त महीने में ही काटकर भंडारण कर लेते हैं ताकि सितम्बर मास में बर्फबारी होने पर उनके पशु भूखे न रहें।

घरों की बनावट

उनके घरों की बनावट पंगवाल जनों के घरों की तरह ही होती है परन्तु उनके पास पशु अधिक होते हैं अतः मकान खुले हों इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। वे याक भी पालते हैं, जिन्हें वे गर्मियों में ऊंची चरागाहों में स्वतन्त्र छोड़ आते हैं और सर्दियों में अपने घरों को ले आते हैं। याक अधिक ठंड बरदाश्त कर लेता है। अतः सर्दियों में भी वह घर के आस-पास विचरता रहता है। इसके बालों से वे थोबियां (एक प्रकार का फर्श के लिए बिछौना) तैयार कर लेते हैं। याक की थोबी इतनी नर्म और गर्म होती है कि इसे कम्बल की तरह रात को ऊपर भी ओढ़ लेते

हैं। इसे ऊपर-नीचे ओढ़ने से सारी रात ठंड नहीं लगती। अतः वे याक के बालों को हिफाजत से रखते हैं तथा कातकर थोबियां बना लेते हैं। याक उनके लिए अत्यन्त उपयोगी पशु है। भेड़ों की ऊन से उन्हें उद्योग-धन्धा मिलता है।

शिक्षा-सुविधाएं

भोट-बस्तियों में हर जगह सरकार ने स्कूल खोले हैं ताकि उनके बच्चे आधुनिक शिक्षा का लाभ उठा सकें। माध्यमिक और उच्च विद्यालय उनकी बस्तियों से काफी दूर पड़ते हैं अतः उच्च शिक्षा के लिए उन्हें बाहर ही रहना पड़ता है जिस कारण लड़कियों की शिक्षा न के बराबर है। कुछ लड़कियां प्राथमिक शिक्षा का लाभ उठा सकती हैं।

भोटों का मूल स्थान

यह विचारणीय विषय है कि भोटों का मूल स्थान कहां है। उन्हें पूछने पर वे अपना मूल स्थान भूटान बताते हैं जो सरासर गलत है। वास्तव में यह जाति तिब्बत की मूल निवासी है। धीरे-धीरे तिब्बत के बहुत-से लोग आस-पास के पड़ोसी भागों में बस गये। स्पिति के लोग भी भोट संस्कृति से सम्बन्ध रखते हैं। ये लोग भी उन्हीं में हैं। स्थानीय लोगों की धारणा है कि सर्वप्रथम ये लोग करियास गांव की धार पर बसे और धीरे-धीरे उन्होंने स्थान-स्थान पर अपनी बस्तियां बसा लीं। आज ये लोग अत्यन्त पिछड़े क्षेत्र में रहते हैं जहां पंगवाल लोगों की पहुंच न के बराबर है। उनकी हर एक बस्ती (भुटोरी) का परिचय निम्नलिखित है—

सुराल भुटोरी

यह भुटोरी सुराल घाटी का सुरम्य स्थल है। यात्री जब धरवास पहुंचता है तो उसे यह स्थल अत्यन्त सुन्दर लगता है। तिल-मिल पानी साथ ही सुराल घाटी से आने वाले नाले की कल-कल, छल-छल ध्वनि तथा नीचे चन्द्रभागा नदी और ऊपर धरवास गांव मानो यात्री स्वर्गतुल्य भूमि में प्रवेश करता है। अगस्त मास में मक्की के लहलहाते खेत एक अनुपम छटा बिखेरते हैं।

इन लहलहाते खेतों और सुन्दर गांव के मध्य से यात्री सुराल घाटी की ओर, नाले के साथ-साथ अपनी दायीं ओर को मुड़ता है। रास्ते में फलों से लदे ठांगी के वृक्ष उसका स्वागत करते हैं। पांच-छः किलोमीटर

का सफर तय करने पर उसे नाले के साथ-साथ बर्फ के ढेर नज़र आते हैं तथा उसके ऊपर गांव दिखाई देते हैं। आस-पास हरी-भरी चरागाहें दिखाई देती हैं। गांव के मध्य हरे-भरे खेत भी मन को बहलाते हैं। किलाड़ से धरवास आठ मील की दूरी पर है। इतनी ही दूरी पर धरवास से सुराल भी है।

अभी हम पंगवालों के गांव में हैं। जहां उच्च विद्यालय भी है। भुटोरी अभी तीन-चार कि॰ मी॰ की दूरी पर है। हम विश्राम करने के बाद धीरे-धीरे चलकर वहां पहुंचते हैं। वहां गोंपा भी है यानी भोटों का बौद्ध मन्दिर यानी मठ।

यह गोंपा गांव के मध्य एक ऊंची पहाड़ी पर है साथ ही भोज-पत्र के वृक्ष सबका स्वागत करते हैं। गोंपा की मान्यता सभी हिन्दुओं और बौद्धों में समान रूप से है। सभी नई फसल यहां चढ़ाते हैं। पैसे, अन्न और घी समान रूप से यहां भेंट किया जाता है। गोम्पे के अन्दर सुन्दर चित्रकारी मिलती है। तीन बोधिसत्वों की आदमकद गच मूर्तियां बनाई गई हैं। जो अत्यन्त प्रभावशाली हैं।

गोम्पे का पुजारी एक लामा है, सभी लोग गोम्पे का खर्च वहन करते हैं। इस प्रकार का यहां कोई लामा नहीं है जो गोम्पे की चढ़त पर ही निर्भर रहे। पूछने पर पुजारी ने बताया कि गोम्पा का प्रबन्ध गांव की प्रजा करती है। गांव में चौदह-पन्द्रह भोट परिवार रहते हैं। गांव दो भागों में बंटा है। एक भाग गोम्पे के साथ ऊपर है और अन्य गोम्पे के ठीक नीचे। गोम्पा में अहिंसा का पालन होता है।

हुड़ान भुटोरी

हुड़ान भुटोरी के लिए यात्री अपना पैदल मार्च किलाड़ से आरम्भ करता है। पूर्व की ओर चढ़ाई चढ़ते हुए परमस गांव आता है। परमस से थोड़ा ऊपर चढ़कर टकवास गांव के लिए सीधा रास्ता है। टकवास गांव में एक प्राईमरी स्कूल है, इससे आगे भड़वास गांव और टंड नामक स्कूल आता है। आगे चलने पर पहाड़ की तलहटी में भोटों का गांव हुड़ान भुटोरी आता है।

बीस-पचीस घर की वह बस्ती है। ऊपर के गांव में एक छोटा-सा गोम्पा है। गोम्पे के साथ ही गोम्पे के विस्तार के लिए निर्माण कार्य चला

था। पुजारी कहीं चला गया था अतः लेखक उनका पूजा-गृह देखने में असमर्थ रहा। पूर्व की ओर काफी दूर लद्दाख के लिए शंख नामक दर्रा दिखाई देता है। बर्फ से ढका रहता है। भुटोरी की खेती योग्य भूमि काफी उपजाऊ है।

कुमार और परमार भुटोरी

ये भुटोरियां साथ-साथ ही हैं। इनके लिए मार्ग साच नामक गांव से भी है और किलाड़ गांव से भी है। दोनों भुटोरियों में गोम्पे हैं। चरागाहें और खेती योग्य उपजाऊ भूमि उपलब्ध है।

टवान भुटोरी

किलाड़ से साच परगना के साच गांव की दूरी केवल 14 कि॰ मी॰ है और साच से सेचु नाला की इतनी ही दूरी है। सारा पैदल रास्ता है। साच से सेचु नाला का मार्ग समतल है। सेचु नाला साथ-साथ बहता है। सेचु नाला में एक सरकारी उच्च विद्यालय है। सेचु से तवान या टवान भुटोरी की दूरी लगभग छः कि॰ मी॰ की होगी। टवान भुटोरी-टवान नाले के किनारे एक सुन्दर गांव है।

वहीं एक गोम्पा है जिसके पूजागृह में सुन्दर चित्रकारी हुई है। वहां पद्म सम्भव जिसे स्थानीय लोग गुरु रिमपोचे कहते हैं की भव्य मूर्ति बनी है।

मूर्ति गच (Stuccu) की बनी है परन्तु यूं लगता है जैसे किसी ने अष्टधातु से निर्मित की हो। दो-तीन अन्य मूर्तियां भी इसी प्रकार गच से बनी हैं परन्तु आकार और प्रकार में वे बड़ी मूर्ति से छोटी हैं। गोम्पे के विस्तार के लिए वहां भी निर्माण कार्य चला था। इस गांव में जंगलात विभाग ने अधिकारियों की सुविधा के लिए एक विश्राम गृह का निर्माण किया है। गांव में एक प्राथमिक विद्यालय भी विद्यमान है।

चस्क भुटोरी

सेचु नाला से दाहिनी ओर की चढ़ाई के मार्ग पर सुंदर वृक्ष-कुंज के मध्य चलते हुए हम चस्क गांव में पहुंचते हैं। चस्क गांव में पंगवालों के तीस-चालीस के करीब घर हैं। गांव के आस-पास सुन्दर खेत हैं। खेतों की सिंचाई होती है।

यह गांव सेचु नाला से 4-5 कि॰ मी॰ के फासले पर समुद्रतल से

लगभग 9000 फुट की ऊंचाई पर है। यहां से चस्क भुटोरी अनुमानतः 9-10 कि. मी. के फासले पर स्थित है। चस्क भुटोरी में भी 14-15 घर हैं।

गांव के मध्य एक गोम्पा है। आस-पास खेती योग्य सुन्दर खेत हैं। रास्ता चरागाह से होकर गुजरता है। स्थान-स्थान पर फूलों की बहार दिखाई देती है। फूल देखने पर डेफौडिल्ज कविता की पंक्तियां स्मरण आती हैं। सारा रास्ता आनन्दमय दृश्य प्रस्तुत करता है। गांव की ऊंचाई लगभग 10500 फुट होगी। नाले में आस-पास बर्फ अगस्त मास में भी विद्यमान रहती है। भुटोरियां भोट संस्कृति के जीवित उदाहरण हैं। ये दुर्गम स्थान हैं।

❑

द्वितीय अध्याय

पंगवाल लोक साहित्य

पंगवाली बोली

पहाड़ी आर्य भाषा परिवार की भाषा है जो हिमाचल प्रदेश के भूभाग में बोली जाती है। उत्तर प्रदेश का जौनसार बावर तथा जम्मू कश्मीर का भद्रवाह क्षेत्र भी पहाड़ी भाषाभाषी हैं। डॉ॰ ग्रीयर्सन ने भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण करते हुए उसे आर्य भाषा की उस-शाखा में रख कर पश्चिमी पहाड़ी की संज्ञा दी है। डॉ॰ ग्रीयर्सन ने पंजाब के उत्तर में भद्रवाह से पश्चिमी नेपाल तक हिमालय की तराई में बोली जाने वाली भाषा को पहाड़ी भाषा कहा। इस प्रकार नेपाल के पश्चिमी क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा को पूर्वी-पहाड़ी, हिमालय के मध्य में गढ़वाल क्षेत्र में प्रयुक्त भाषा को मध्य पहाड़ी तथा हिमालय के पश्चिम में बोली जाने वाली भाषा को पश्चिमी-पहाड़ी का नाम दिया। आज इसे पहाड़ी भाषा का नाम दिया जाता है।

अतः पहाड़ी भाषा की उप भाषाएं हुई—सिरमौरी, क्योंथली कहलूरी, कुल्लुई, मण्डयाली, कांगड़ी-चम्बयाली, जौनसारी तथा भद्रवाही। इनमें जौनसारी उत्तर प्रदेश के देहरादून जिला के जौनसार बावर में मुख्यरूप से बोली जाती है जबकि भद्रवाली जम्मू कश्मीर के भद्रवाह क्षेत्र में बोली जाती है। अन्य उप भाषाएं हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती हैं।

हिमाचल के मध्य हिमालयी जिलों—किन्नौर और लाहौल स्पिति में तिब्बती-वर्मी परिवार की भाषाएं बोली जाती हैं।

जिला चम्बा की मुख्य बोली (उप भाषा) चम्बयाली है—भट्याली, चुराही, गादी तथा पंगवाली, चम्बयाली की ही बोलियां हैं।

पंगवाल जनजाति की भाषा पंगवाली है। यह चम्बयाली की उप बोली है। चम्बयाली की अन्य बोलियां भरमौरी (गादी), चुराही और भटयाली (भटियात तहसील की) हैं। इस प्रकार पंगवाली बोली पश्चिमी पहाड़ी की बोली है। अब हम साधारण शब्दों में कह सकते हैं कि यह पहाड़ी भाषा की बोली (Dialect) है जो सम्पूर्ण पांगी तहसील में बोली जाती है। अब तक इस पर अनुसंधान कार्य नहीं हुआ है, बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में इस पर लिंगुइस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया के अन्तर्गत आंशिक रूप से कार्य हुआ है। यह कार्य ग्राहमवैली ने किया है लेकिन चम्बयाली और चम्बा की अन्य बोलियों पर उन्होंने व्यक्तिगत रूप से कार्य किया।

वे बोलियां जिन पर उन्होंने सर्वे के अन्तर्गत व्यक्तिगत रूप से कार्य किया, यूं हैं--चम्बयाली विशेष, चम्बयाली बोलियां-भरमौरी (गादी), चुराही, भटयाली तथा लाहौली जो कि तिब्बती-हिमालयन ग्रुप के अन्तर्गत आती है। लाहौल का जो भाग उस समय चम्बा रियासत के अधीन था उसे चम्बा लाहौल कहा जाता था। पंगवाली बोली पर उन्होंने महाराजा भूरी सिंह द्वारा तैयार कराई गई दो हस्तलिखित पोथियों की सहायता लेकर कार्य किया है तथा उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि वह किसी पंगवाल भाषा-भाषी से व्यक्तिगत सम्पर्क न कर सके। अन्य बोलियों पर यदि कोई त्रुटि का आभास हो तो वह उसकी जिम्मेदारी अपने पर लेते हैं परन्तु पंगवाली का कार्य उन्होंने किसी अन्य विद्वान द्वारा किये कार्य के आधार पर किया है (सन्दर्भ चम्बा गैजिटियर अपैन्डैक्स-8)।

बदे	=	बादल	खट्टु	=	खट्टा
मेघ	=	वर्षा	का	=	काला
डंग	=	बर्फ	हच्छा	=	सफेद
अमलु	=	खट्टा	बुट्टा	=	वृक्ष
शुक्कु	=	सूखा	अल्ली	=	गीली
यक	=	एक	अग्ग	=	आग
दुई	=	दो	हिशना	=	बुझना
टाई	=	तीन	गड्ड	=	नदी
पधरा	=	हमवार	हुड	=	मेढ़ा

ढाड्ड	=	भेड़ (एकवचन)	ई बी, इज्ज	=	माँ
ढेड्ड	=	भेड़ें (बहुवचन)			
गौड़ा	=	गाय	धणी	=	पति
क्वा	=	लड़का	ज्योली	=	पत्नी
क्वी, कुई	=	लड़की	खुर	=	पांव
आगे	=	अग्र	ही	=	कल
नश	=	भाग	चिलंग्ड़	=	पीड़ा

इत्यादि।

सर्वनाम

प्रथम पुरुष	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
अंऊ (एक वचन)	तु	ओ
अस (बहु वचन)	तुस	ओ या ओह

अबे	=	अब	तिखन	=	तक
विखन	=	कम	जिखन	=	जब
इठि या इढी	=	यहां	उठि या उढी	=	वहां
तिठि या तिढि	=	वहां			

जानकारी के लिए कुछ अन्य शब्द यूं हैं—

असा, असु अस = है   असे, अस = हैं।

असि (स्त्रीलिंग) = है।

है के लिए कहीं-कहीं सा का प्रयोग भी किया जाता है। थी और 'था' का प्रयोग भी आम देखा गया है। थिया 'थिए' भी प्रयोग में आता है। संदिग्ध भूतकाल और भविष्यत् काल में ल का प्रयोग आम देखा गया है। जैसे होगा=भोला। कारक में करण और अपादान में कोई भेद नहीं नजर आता, इन दोनों के लिए क्यां और कणा विभक्ति चिह्न का प्रयोग हुआ है।

सर्वनाम में सम्बन्ध कारक में मेरा, मेरे लिए का प्रयोग होता आम देखा गया है। अधिकरण कारक में पुर, पुठी और बिच विभक्तियों का अबाध रूप से प्रयोग हुआ है।

स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में बराबर भेद बना हुआ है। स्त्रीलिंग के लिए

सि का प्रयोग हुआ है जबकि पुल्लिंग एक वचन के लिए सा या असाँ अस, बहुवचन के लिए–से का प्रयोग प्रायः होता अनुभव किया गया है।

क्वा=लड़का क्वी=कन्या, लड़की शब्द कुड़ी और कुड़ा के अपभ्रंश हैं जो अन्यत्र पहाड़ी भाषा में प्रयुक्त होते हैं। का=काला शब्द काला का संक्षिप्त रूप है। कता=करता का संक्षिप्त रूप है। ऐसे अन्य शब्द भी हैं। यह पंगवाली की विशेषता है जो अन्य शब्दों के उच्चारण में भी कहीं-कहीं नोट की गई है।

पानी के लिए पाणी-उच्चारण इसे अन्य पहाड़ी बोलियों के समीप ले जाता है। खांता, घैंहता के उच्चारण चुराही और कुल्लू की कुछ बोलियों के निकट ले जाते हैं।

वाक्य विन्यास

- पांगी बड़ा सुन्दर क्षेत्र है–पैगई अब्बल देश असा।
  यहां के लोग ईमानदार हैं–इठैणीमहण ईमानदार असे।
- पहले यहां सड़कें नहीं थीं–पहल इठि बत नथ।
  रास्ते बड़े कठिन थे–बत औखी थी।
- आगे यह क्षेत्र कैसे होगा–अग्गु इश कि भूंता ए।
- यह विकास पर निर्भर करता है–विकास पुठ निर्भर कता।
- अब यहां फसलें अच्छी होंगी–अबे इठि फसल खरी भूणी।
- लड़के स्कूल जाते हैं–गैभुर स्कूल भूते।
- लड़कियां पढ़ती हैं–क्वी पढती।
- कुछ लोग उच्च पद पर हैं–कुछ महण उच्च पद पुठ लगो से।
- कुछ दिन में मोटर पहुंच जायेगी–कुछ दिने मोटर पुजी घैंती।
- पहले यह क्षेत्र पिछड़ा हुआ था–पहले इदेश पंतु थिआ।
- यहां के लोग गाने-बजाने में विश्वास रखते हैं–
  इठैणि महण गाना बजाना पुठ बिश्वास कते।
- आस-पास जंगल है–घे ओ बण असे।
- जिनकी रक्षा अनिवार्य है–जिन कि रक्षा जरूरी असि।
- अब यहां अनन्त फसलें होंगी–अबे इठि अनन्त फसला भूति।

भाषा का परिचय

सर्वनाम

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पु॰	अंऊ	अस (अंस) असै
मध्यम पु॰	तु	तुस (तुंस) तुसी/तुंसी
अन्य पु॰	ओ/ए/से	ओह/ऐह/से

सर्वनाम के कारकीय रूप

कर्ता :

उ॰ पु॰	मैई	असि (अंसि)
म॰ पु॰	तैंई	तुसि (तुंसि)
अन्य पु॰	ओनी/एनी/इनी	औन्ही/एनी/ऐहनी

कर्म :

उ॰ पु॰	मुं (कि)	असि(कि)
म॰ पु॰	तु जै	तुसि जै
अन्य पु॰	ओसे/एसं	ओन्हें/ऐन्हें

कारण :

उ॰ पु॰	मुं क्यां (कणा)	असि क्यां (कणा)
म॰ पु॰	तु क्यां (कणा)	तुसि क्यां (कणा)
अन्य पु॰	एस क्यां/ओस क्यां (कणा)	ओन्ही/एन्ही क्यां (कणा)

सम्प्रदान :

उ॰ पु॰	मोदी/मुं (जै)	असि (जै)
म॰ पु॰	तौदी/तु (जै)	तुसदी/तुसी (जै)
अ॰ पु॰	उसदी/ओस (जै)	उनदी/इनदी/औन्ही (जै)

अपादान :

उ॰ पु॰	मूंकणा (क्यां)	असि कणा (असि क्यां)
म॰ पु॰	तौकणा (क्यां)	तुस कणा (क्यां)
अ॰ पु॰	ओस कणां (क्यां)	ओन्हीं कणा (क्यां)

सम्बन्ध :

उ॰ पु॰	मैं/मण	हैं
म॰ पु॰	तण	तौण
अ॰ पु॰	तैसे/उसे	तेन क्या/उन क्या

अधिकरण :

उ॰ पु॰	मुं पुठ (बिच)	असपुठ (बिच)
म॰ पु॰	तौ पुठ (बिच)	तुंसि पुठ (बिच)
अ॰ पु॰	एस पुठ/ओस पुठ	ऐन्ही पुठ/ओन्ही पुठ

कारकीय रूपों में क्वी (लड़की)

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	क्वी	क्वीं
कर्म	क्वी दे	क्वीं के/दे
करण	क्वी क्यां	क्वींक्यां
सम्प्रदान	क्वी दी/जै	क्वीं दी/जै
अपादान	क्वी क्यां	क्वीं क्यां
सम्बन्ध	क्वी जै (कणा)	क्विंयां जै (कणा)
अधिकरण	क्वी पुठ (बुठ) बिच	क्वियांपुठ (बुठ) बिच
सम्बोधन	क्विए	क्विओ

कारकीय रूपों में घोड़ा

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	घोड़े	घोड़े
कर्म	घोड़े जै (दी)	घोड़े जै (दी)
करण	घोड़े क्यां	घोड़े क्यां
सम्प्रदान	घोड़े दी/जै	घोड़े दी/जै
अपादान	घोड़े क्यां (कणा)	घोड़े क्यां (कणा)
सम्बन्ध	घोड़े जै (कणा)	घोड़े जै (कणा)
अधिकरण	घोड़े पुठ/बुठ (बिच)	घोड़े पुठ/बुठ (बिच)

काल
लिंग रूपों में घणा (जाना)

	एकवचन	बहुवचन
वर्तमान काल :		
	पु. वह जाता है=ओ घैंता	वे जाते हैं=ओ घैंते
	स्त्री. वह जाती है=ओ घैंती	वे जाती हैं=ओ घैंती
	तू जाती है=तु घैंती	तुम जाती हो=तुस घैंती
	मैं जाती हूं=अऊं घैंती	हम जाती हैं=अस घैंती
भविष्य काल :		
	मैं जाऊंगा=अऊं घैल	हम जाएंगे=अस घैल
	मैं जाऊंगी=अऊं घैल	हम जाएंगी=अस घैल
	वह जाएगा=ओ घैल	वे जाएंगे=ओह घैल
	तु जाएगा=तु घैल	तुम जाओगे=तुस घैल
भूतकाल :		
	वह चला गया=ओ घड़ गो	वे चले गये=ओ घई गे
	वह गया था=ओ गौ थिआ	वे गए थे=ओ गौ थिए
	मैं गया था=अऊं गौथिआ	हम गए थे=अस गौ थिए
	मैं गई थी= अऊं गौ थी	हम गई थीं=अस गौ थी

हूणा क्रिया की सभी काल/वचन और लिंग रूपों में रचना

'हूणा'

होता है	हूंता
होते हैं	हूंते
होती है	हूंति
होती हैं	हूंति
हो रहा है	होई रहोसा
हो रहे हैं	होई रहोसे
हो रही है	होई रहोसि
होता था	हुंता था
होते थे	हुंते थे

होती थी	हौंति थी
हो रहा था	भोई रहोसा
हो रहे थे	भोई रहोसे
हो रही थी	भोई रहोसि
वह होगा	ओ होल (भोल)
वे होंगे	ओ होल (भोल)
वह होगी	ओ होली
हो रहा होगा	भूण लगोस
हो रहे होंगे	भूण लगोस
हो रही होगी	भूण लागोसि

पंगवाली शब्द सम्पदा

बढ़े	बादल
डंग	बर्फ
का	काला
टिडा	काला
हच्छा	सफेद
पीऊ	पीला
कठुढ	लकड़ी
अल्ली	गीली
पुतैई	पतली
हिश	बुझना
हुशाण	बुझाना
गड्ड	नदी
ना	नाला
झिणे	पहनने के कपड़े
रोठी	रोटी
धण	रेवड़
छेड़	छेलु (बकरी का बच्चा)
केएव	उरणु (भेड़ का बच्चा)
गौडा	गाय

ई-बी-इआ-वीआ	मां
धाणी	पति
ज्योलि	पत्नी
ढाडुढ़	भेड़
ढेडुढ़	भेड़ें
डांग्डु	भेडु
डुगार	भेडु
क्वा	लड़का
क्वी	लड़की
ही	पिछला कल
शु	आने वाला कल
शंढ	बांझ
नशणा	भागना
पणा	पत्ता
ची	लकड़ी/चिता

पंगवाली का भाषाई नमूना

हिन्दी

पांगी बड़ा सुन्दर क्षेत्र है। यहां के लोग ईमानदार हैं। पहले यहां सड़कें नहीं थीं। रास्ते बड़े कठिन थे। आगे यह क्षेत्र कैसे होगा यह विकास पर निर्भर करता है। अब यहां फसलें अच्छी होंगी। लड़के स्कूल जाते हैं। लड़कियां पढ़ती हैं। कुछ लोग उच्च पद पर हैं। कुछ दिनों में मोटर पहुंच जाएगी। पहले यह क्षेत्र पिछड़ा हुआ था। यहां के लोग गाने बजाने में विश्वास करते हैं। आस-पास जंगल हैं, जिनकी रक्षा अनिवार्य है। अब यहां उन्नत फसलें होंगी।

पंगवाली

पैंगई अब्बल देश असा। इठैणी महण ईमानदार असे। पहले इठि बत नौथ। बत औखी थी। अग्र इ देश कि भूंता इ विकास बुठ निर्भर कता। अबे इठी फसल खरी भूणी। गैभरू स्कूल छकत-धैंते। क्वी पढ़ती। कुछ महण उच्च पद पुठ लगोरे। कुछ दिने मोटर पुजी धैंती। पहलम ए देश

पंतु थिआ। इठैणि महण गाण-बजाण बुठ विश्वास कते। ये ओ बण आसे। जिन की रक्षा जरूरी असि। अबे इठि उन्नत फसला भूंति।

भोटी बोली का संक्षिप्त परिचय

सर्वनाम

ङ या ङरङ	मैं
ङ नी	हम दो
ङ कुल	हम सब
रण्ये	तुम
रण्ये नी	तुम दो
रण्ये कुल	तुम सब
वह	वे
वे (सब)	वे (कुल)

रिश्ते-नाते

रश्ची	बड़ी बहन
आंच	भाई
आमा	माता
आव	पिता
आती	दादा/नाना
एबी	दादी/नानी
पुचु/पोचो	लड़का
पुढ़ोपु	छोटा बच्चा
हयुमु	सास
हयुमु (क्योह)	ससुर
पां	पत्नी
आचुछेक पां	बड़े भाई की पत्नी
नुछोक पां	छोटे भाई की पत्नी
माचुङ	भाभी
मंमा	मामा

ऐनी डी डे	मामी
मुमांक पुचु	मामा का लड़का
मुमांक पूं	मामा की लड़की

पालतू पशु

राहये	बकरा
रोपु	बकरी
पा	गाय
याह	याक
जगो	बैल
जूं	चुरी

विविध सूची

शीङ	जमीन
टू	गेहूं
सो	जौ
बणे	चावल
मार	घी
खामा	घर

भोटी के कुछ वाक्य

तू जाता है	रण्यो छे हाय।
तुम दो जाते हो	रण्यो नी छे हाय।
तुम सब जाते हो	रण्यो कुल छे हाय।
मैं जाता हूं	ङ छे।
हम दो जाते हैं	ङ नी छे।
हम सब जाते हैं	ङ कुल छे।
वह जाता है	भेहयाङ छे लो।
वे दो जाते हैं	भेह नी छे लो।
वे सब जाते हैं	भेह कुल छाक नाङ।
तू खाना खाता है	रण्यो छेम सच हाय।

तू गाना गाता है	रण्यो गेती ले नग नाङ।
राम के पिता बीमार हैं	राम आब नेंद नाङ।
श्याम रोज़ घर जाता है	श्याम शांत खनमे छाक नाह।
वह मेरा भाई है	बेङ य आचु हीन।
तू घर से कब आया	रण्यो खनमेक नाम युङ।
अच्छा बैठो हम चलते हैं	रण्यो दुह यह है।
आपके पिता कहां हैं	रण्यो आब को योह।
तू रोज स्कूल जाता है	रण्यो शात स्कूले छा योह हाय।
मैं इस वर्ष शिमला नहीं जाऊंगा	दी रैल्ङ शिमले मासोङ।

सोपरियां (सुभाषित)

सोपरी–अऊं गडीयां वार तू गडीयां पार धिक अमल्यासे जरूर मण कनारे नस। राम नाम मण कनारे नस।

अर्थ–मैं गड़ (नदी) के इस ओर हूं और तुम नदी के उस ओर खड़े हो। मन की बात पूरी करने के लिए (मन की प्यास बुझाने के लिए) मेरे पास आप जरूर आना।

सोपरी–तां ता भला कनार नसड़े नें ई घण गाह घाड़े गोरू भीती अलमोरे गणा। राम नाम भीती अलमोरे गणा।

अर्थ–प्रेमिका के पूर्व आग्रह पर वह उत्तर देता है कि मुझे आपके पास आने का समय नहीं क्योंकि मैंने डंगर (गौरू) बाहर निकाले हैं और गण (मधु मक्खियां) अन्दर से बाहर भागने की मन्त्रणा कर रहा है।

सोपरी–जां तरक माइयां बब तां तकर थमे पलि राणी लगी भाई भ्योजी बारी लगा कंटेरे बाण। राम नाम लगा कंटेरे बाण।

अर्थ–लड़की अपनी व्यथा सुनाती है कि जब तक मां-बाप जीवित थे वह घर की राणी थी। परन्तु जब भाई भाभी की बारी आई उसके लिए कांटे का बाण बिछ गया।

सोपरी–हतेरे ता भला अंगूठिया पोहरेजेरी थियावा। मुं न यैवा ढाडणीं तण दिलेरी थियावा। राम नाम तु तण दिलेरी थियावा।

अर्थ–जब लड़की लड़के को आश्वासन देती है तो लड़का प्रत्युत्तर में कहता है कि हाथ की अंगूठी में फिरोजे का नग लगा है परन्तु मुझे

तेरे दिल का विश्वास नहीं।

सोपरी–हिकी ता लगी चनाउ चिकी तौउ चताउं माई चमे कराड़े हटिया। राम नाम चमे कराड़े हटिया।

अर्थ–किसी मां का पुत्र चम्बा दुकान पर बैठा होता है तो उसे अचानक हिचकी लगती है तो वह कहता है–हिचकी, तो मुझे बहुत जोर की आई है। हे मां मैं तुझे चम्बे में दुकानदार की दुकान पर याद कर रहा हूं।

सोपरी–ची दल केलार कोई भाण रख माई काती पंद्रह-सोढ़े राम नाम काती पंदह-सोढ़े।

अर्थ– दोबारा उसका वही पुत्र कहता है। चील की जंगणी (मशाल) केल की कोई (लकड़ी-फाड़ने का विशेष औज़ार) हे माता! मेरी प्रतीक्षा कार्तिक मास के 15-16 को कर।

सोपरी–द्वार अग्र ता सियावेरी बूटा तू मेई दा कौआ ल्यारी याला मिढणु पुत्रे। राम नाम याला मिढणु पुत्रे।

अर्थ–मां को जब इस प्रकार का सन्देश मिलता है तो मां को प्रतीक्षा होती है कि उसके पुत्र ने आना है। उसके द्वार के आगे सेब का वृक्ष है उस पर कौआ बोलता है। वह उसको कहती है कि अब तुम न बोलो। आज मेरे पुत्र ने आना है।

सोपरी–बते ता भला बतहाणे लोड़ी तुम्हारी लमिया प्यारा मिढणु पुत्र बते कोढ़याले मिलुआ। रामा नामा बते कोढ़याले मिलुआ।

अर्थ–जब कोई राहगीर आ रहा होता है तो वह उस से पूछती है कि मेरा प्यारा पुत्र आपको कहां मिला।

लोकोक्तियां

भयाण–भयाण न सुखांइता, डा डा न।

भाई-भाई को नहीं चाहता। डाल-डाल को नहीं।

बब कुए ब्याह हेरी न डरता, कुआ बबे मरने हेरी न।

पिता पुत्र के ब्याह से नहीं डरता पुत्र पिता के मरने से।

भाई-भाई केंइ भिवणु, माई बबे मरनूं

भाई-भाई से भिन्न होगा, और मां-बाप का मरना।

कीडे खावे रज्जणी होरी डर।

कीडे (सांप) ने डंग मारा हो तो रस्सी से डर।

दुधे पुत्रे कोई न रजा दूध और पुत्र से किसी का जी नहीं भरता।

सियाणे बचार, अमले स्वाद, पिछे ता इल्ला गवरोह याद।

बुजुर्ग के विचार और आमले का स्वाद बाद में याद आता है।

छिछी न बच्छी, नींद आई अच्छी।

न गाय न बच्छी, नींद आये अच्छी।

हली रोष कुदाली।

हाली का रोष कुदाली पर।

हते हर कोई नाता, मथे कोई न नाता

हाथ की कमाई तो हर कोई ले ले, माथे का कोई नहीं ले सकता।

लिखोरी खाणी कि लघोरी

लिखा हुआ (भाग्य का) खाना है या मिला हुआ धन।

इत्यादि।

संस्कार

अन्य जनजातियों की तरह पंगवाल-जनजाति भी विधिवत् संस्कार में विश्वास करती है। उनके संस्कारों में निम्नलिखित संस्कार प्रसिद्ध हैं–

जन्म संस्कार

जन्म के समय मां और बच्चे के स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखा जाता है। दूसरी ओर धार्मिक विचारधारा को भी दृष्टिगत रखा जाता है। शुद्धि पर विशेष जोर दिया जाता है। शुद्धि तीसरे, नौवें या दसवें दिन की जाती है। इस दिन सभी कपड़े धोये जाते हैं। बच्चे को गाय के गूंतर से नहलाया जाता है। घर में भी इसी प्रकार गोमूत्र छिड़का जाता है। इस शुद्धि में सारा परिवार भाग लेता है। शुद्धि के बाद ही लड़की (जच्चा) के माता-पिता आते हैं तथा बच्चे को कुछ भेंट स्वरूप देते हैं।

नामकरण संस्कार

नामकरण संस्कार प्रायः पहले, तीसरे, सातवें या नवें मास किया जाता है। कभी-कभी अन्न प्राशन संस्कार और नामकरण संस्कार इकट्ठे भी मनाये जाते हैं।

मुण्डन संस्कार

मुण्डन संस्कार नामकरण संस्कार के बाद ही किया जाता है। बच्चे के सिर के बाल इसी दिन उतारे जाते हैं। सिर के बाल प्रायः मामा उतारता है। कभी-कभी माता-पिता भी बाल उतारना अपना कर्तव्य समझ लेते हैं। ऐसा किसी प्रकार की विवशता पर ही किया जाता है अन्यथा प्रथा के अनुसार मामा ही इस कार्य को करता है। यदि सगा मामा न हो तो अन्य व्यक्ति ढूंढ लिया जाता है और उसे मामा मान लिया जाता है। बालों को बड़ी सावधानी से किसी किलटु (गुगटू) में डालकर विश्वास पात्र व्यक्ति के हाथ दिया जाता है। वह उन्हें अधवारी में अज्ञात स्थान पर दबा देता है। हर संस्कार के समय धूप और दीप जलाकर विशेष विधि से पूजन किया जाता है। बच्चे को जब प्रथम बार बाहर निकाला जाता है तो धूप जलाकर प्रथम दरवाज़े की दहलीज पर रखा जाता है।

पुन्हैई त्यौहार, में बच्चे को गांव के देवता के पास लाया जाता है। प्रसाद रूप में आटे का बकरू बनाया जाता है। घी, हलवा और लुच्ची गांव के आमंत्रित लोगों में प्रसाद के तौर पर बांटा जाता है। तत्पश्चात् शराब और अन्य सामग्री से खूब खाना-पीना होता है।

प्रजा को भोज अलग दिन दिया जाता है। इस प्रकार हर माता-पिता की इच्छा होती है कि सभी संस्कार शास्त्र विधि से मनाये जायें ताकि बच्चे पर शुभ संस्कार पड़ें और वह आगामी जीवन में सुखी रहे।

विवाह संस्कार

हर जनजाति या समुदाय की प्रथाएं अपनी-अपनी होती हैं। विवाह की विधियों में भी कतिपय भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार पंगवाल लोगों की विवाह प्रथाओं की भी अपनी विशेषता है–

पंगवाल जनजाति के विवाह के प्रकार संक्षिप्त रूप से निम्नलिखित हैं–मंगवाली विवाह, प्रेम विवाह, जबरन शादी। इनका वर्णन क्रमशः निम्नलिखित पंक्तियों में दिया जाता है–

मंगवाली विवाह

इस विवाह की तीन अवस्थाएं हैं–पिलम, फक्की और छक्की।

पिलम

पांगी में प्रायः लड़का और लड़की विवाह से पूर्व ही माता-पिता की जानकारी के बिना स्वतंत्र रूप से एक दूसरे को पसंद कर लेते हैं। अपनी पसंदगी के बाद लड़का अपने संरक्षक (माता-पिता या अन्य) से विवाह की इच्छा प्रकट करता है तथा अपनी पसंद की लड़की बता देता है। अब वे अपने किसी रिश्तेदार या अन्य विश्वासपात्र व्यक्ति को लड़की के संरक्षक या माता-पिता के पास विवाह की संभावना का पता लगाने के लिए भेजते हैं। वह वहां जाकर विवाह की बात चलाता है। यदि सम्भव हुआ तो पिलम की तिथि निश्चित की जाती है। निश्चित तिथि को लड़का अपने दो-तीन साथियों के साथ लड़की के घर आता है। वह दो-तीन बोतलें शराब की और अन्य भोजन सामग्री भेंट स्वरूप साथ लाता है। लड़की के परिवार वाले उनकी आवभगत करते हैं। दूसरे दिन वह अपने दोस्तों के साथ वापस घर आ जाता है। यदि सम्भव हुआ तो बंधा (जेवर) भी वह लड़की को भेंट स्वरूप दे आता है।

यदि आवश्यक हुआ तो पिलम के आने पर लड़का लड़की के पास अधिक दिन भी ठहर सकता है। इस दशा में वह अपने साथ आये दोस्तों को वापस भेज देता है और स्वयं लड़की के परिवार में ठहर जाता है। वास्तव में अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा पिलम विवाह संस्कार में महत्वपूर्ण अवस्था है। पिलम के समय से वह कानूनन लड़की का पति बन जाता है और यदि संतान उत्पन्न हो गई तो उस सन्तान का वह बाप माना जाता है।

इस संस्कार के बाद वह स्वतंत्र और अबाधरूप से लड़की के पास आ-जा सकता है। यदि लड़के या लड़की के माता-पिता या दोनों अगली अवस्था का अधिक खर्च करने में असमर्थ हों तो पिलम को ही शादी हुई मान लेते हैं और बाद में लड़की को घर ले जाते हैं। यदि फक्की और छक्की से विधिवत् विवाह करना निश्चित हुआ हो तो अगली तिथि निश्चित की जाती है। लड़का लड़की को मायके छोड़ घर चला जाता है।

फक्की

फक्की की निश्चित तिथि को पुनः लड़का और दीवान जिसने मंगवाली के समय विवाह की बात चलाई हो, अपने साथ काफी मात्रा में हलवा और लुच्ची तथा शराब की पचास-साठ बोतलें भेंट स्वरूप लाते हैं। यदि लड़की को जेवर पिलम के समय न दिया हो तो कोई आभूषण भी साथ लाते हैं। आने पर लड़की का परिवार उनका स्वागत करता है। दीवान उनको रस्म के अनुसार 10 या 15 रुपये लुम के रूप में भेंट करते हैं। लड़की वाले यदि लुम न लेना चाहें तो पैसे वापस देते हैं। रात को खूब खाना-पीना होता है। अब शादी की अंतिम रस्म के लिए दिन निश्चित किया जाता है। प्रातः दीवान लड़के के साथ वापस आ जाता है, यदि लड़का चाहे तो लड़की के परिवार के साथ कुछ दिन रह सकता है।

अब छक्की की रस्म के लिए प्रतीक्षा की जाती है। दिन पांच-छः मास के बाद भी आ सकता है। वर्ष के बाद भी सामर्थ्यानुसार निश्चित किया जाता है।

छक्की

मंगवाली विवाह में अंतिम अवस्था छक्की है। इस अवस्था में वर अपने घर से परम्परागत वेशभूषा में सज-धज कर बारात (जानी) के साथ

लड़की (वधू) के घर प्रस्थान करता है। क्योंकि वधू प्रवेश सोम, बुध और शुक्रवार को शुभ माना जाता है अतः इसी के अनुसार बारात घर से चलती है। बारात में केवल तीन ही व्यक्ति जाते हैं। वे हैं मामा, पटमहारा (पट महाराज) और दीवान, तीन जन के अतिरिक्त वर (स्थानीय भाषा में धाणी)। पट महाराज प्रायः मामा या चाचा का लड़का होता है। इसने विवाह में कई कर्तव्य निभाने होते हैं। पटमहारा के अलावा उसकी सहायता के लिए महारा भी हो सकता है। महारा आमतौर पर चचेरा भाई होता है। पटमहारा के हाथ में तलवार होती है जो जादू-टोने से बचाती है। बारात में आगे दीवान चलता है। उसके पीछे वर, अन्य व्यक्ति उनका अनुसरण करते हैं।

बारात के साथ सामान उठाने के लिए भारी हुआ करते हैं जो सामान रखकर वापस आ जाते हैं। लड़की के घर में परिवारजन, अन्य सम्बन्धी और ग्रामवासी उनका यथासम्भव स्वागत करते हैं। वहां वर और वधू को ग्राम देवता की पूजा के लिए बिठाया जाता है। यहां वधू के घर विवाह संस्कार का अंत समझा जाता है। अब रात को खाद्य सामग्री और शराब से खूब महफिल सजती है। दूसरे दिन प्रातः वधू को विवाह के सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहनाये जाते हैं जो वर साथ लाता है। अब लड़की को विदा किया जाता है। वापसी में लड़की के भाई भी बारात के साथ लड़की को छोड़ने जाते हैं। लड़की का मामा बाद में जाता है। लड़की के भाई और मामा को लड़की के ससुराल में 'दिवैते' कहकर पुकारते हैं तथा उनकी खान-पान से खूब आवभगत करते हैं। वहां भी उनसे पूजन कराया जाता है। बाद में दोनों को सत्तु में घी डालकर 'टोट' खाने के लिए दिये जाते हैं। जो पहले खा ले उसे विजयी समझा जाता है। अब उपस्थित सज्जनों को भोज दिया जाता है इसे रिहानी (रात का भोज) कहा जाता है। इसमें घी, चपाती और शहद होता है। इस प्रकार एक-दो दिन खूब महफिल चलती रहती है। तीसरे दिन पटमहार, महार और मामा इत्यादि चले जाते हैं। उन्हें घी और सत्तु भेंट स्वरूप दिये जाते हैं।

जब सभी मेहमान चले जाते हैं तो गांव के देवता की जातरा का आयोजन किया जाता है जिसके लिए गांव के लोगों को आमंत्रित किया जाता है। अब पुनः गाना-बजाना और महफिल होती है।

फिरौनी (गौना)

मामा और लड़की के भाई जाते समय वर और वधू को अलग बुलाकर पूछ लेते हैं कि वे फिरौनी पर कब आयेंगे। फिरौनी की तिथि वहीं निश्चित कर ली जाती है। दो-तीन दिन के भीतर वधू अपने पति के साथ अपने मायके जाती है। साथ पर्याप्त मात्रा में हलवा और लुच्ची ले जाते हैं। वापसी पर लड़की के माता-पिता उन्हें भी पर्याप्त मात्रा में घी-सत्तु और लुच्ची देते हैं।

टोपी लाना (विवाह का प्रकार)

मंगवाली के अतिरिक्त दूसरे प्रकार का विवाह टोपी लाना है। यह विधवा विवाह है। जब कोई औरत छोटी उम्र में विधवा हो जाय तो अपने ज्येष्ठ (जेठ) या देवर (दियोर) के साथ विवाह कर लेती है। इसे टोपी लाना कहते हैं। इसे मुद्‌याली शादी भी कहते हैं।

मुद्‌याली विवाह

यदि कोई महिला अपने पति को तलाक दे या अपने प्रेमी के साथ भाग जाये तो इस दशा में वह दूसरी शादी कर लेती है जिसे मुद्‌याली शादी से जाना जाता है। उसका दूसरा पति पूर्व पति को मुदा (Compensation) देता है। विवाह विच्छेद बुजुर्गों की पंचायत या सभा में किया जाता है। सम्बन्ध विच्छेद एक घास की टहनी को तोड़कर किया जाता है।

प्रेम विवाह

प्रेम विवाह प्रायः कोर्ट में किया जाता है।

जबरन शादी

जबरन शादी का भी पांगी में रिवाज़ है। जब कोई लड़का किसी लड़की को पसंद करे तो उसे वह पीठ पर उठाकर ले जाता है। यदि वह लड़के के घर खाना खा ले तो समझा जाता है कि वह शादी के लिए रज़ामंद है। ऐसी दशा में लड़के वाले लड़की के माता-पिता के घर कुछ खाने-पीने का सामान ले जाते हैं और उनको मना लेते हैं। यदि वे शराब और अन्य सामान स्वीकार कर लें तो समझौता हो जाता है। इस विवाह को समाज मान्यता देता है। कभी गर्मा-गर्मी और लड़ाई-झगड़ा भी हो जाता है। ऐसी दशा में पुलिस तक नौबत आ जाती है और विवाह नहीं

होता। माता-पिता पता कर लेते हैं कि लड़की का उनके प्रति क्या व्यवहार है। यदि लड़की की स्वीकृति का आभास हो तो शादी सम्भव हो जाती है। समाज तो ऐसे विवाहों को मान्यता देता है परन्तु कोर्ट में पहुंचने पर लड़की की उमर और स्वीकृति के आधार पर ऐसे विवाहों को वैध ठहराया जाता है।

वास्तव में लड़का और लड़की जब एक दूसरे को चाहने लगते हैं और माता-पिता का विपरीत रवैया देखते हैं तो उस दशा में वे किसी स्थान पर मिलने का फैसला करते हैं और लड़का उसे उठाकर ले जाता है। लड़की का विरोध में चिल्लाना एक बहाना-मात्र होता है।

भोट-जनजाति के संस्कार भी इसी प्रकार के हैं। विवाह निश्चित होने से पहले वे वधू के लिए पर्याप्त आभूषण की बात कर लेते हैं। विवाह के समय वर के प्रवेश करने से पहले वे जेवरात देखते हैं। अन्य विवाह प्रथाएं लगभग पंगवाल लोगों की तरह ही हैं।

दहेज प्रथा

पंगवालों में दहेज प्रथा की कुरीति नहीं है। फिर भी कन्या के माता-पिता यदि आवश्यक समझें तो अपनी सामर्थ्यानुसार भेंट स्वरूप आम प्रयोग की वस्तुएं लड़की को दे देते हैं।

मृत्यु संस्कार

किसी की मृत्यु होने पर सर्वप्रथम तुरन्त कार्य शुरू करने हेतु तीन कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की जाती है, वे हैं—व्योराही, लवैंती और कुई। व्योरा ही का कार्य शीघ्र आरम्भ हो जाता है। यह सम्बन्धियों और अन्य अड़ोस-पड़ोस के लोगों को मृत्यु के विषय में सूचित करता है। जब कि लवैंती पुरोहित और कुई (लड़की) के लिए पुलं बनाती है और बाद में कपड़े धोती है। कुई का उस समय तुरन्त तो कोई काम नहीं होता परन्तु बाद में कई संस्कारों में उसकी आवश्यकता पड़ती है।

मृतक की अरथी उठाने के लिए विमान (Bier) तैयार किया जाता है। उसको ढंकने के लिए मसरु (कफन) का प्रयोग होता है। अरथी को चन्द्रभागा नदी के किनारे ले जाया जाता है। कई स्थान जो चन्द्रभागा नदी से बहुत दूर हैं, वहां मृतक को नाले के किनारे जलाया जाता है। कहीं-कहीं खेतों के किनारे ही श्मशान बने होते हैं। श्मशान को ले जाते

हुए वाद्ययंत्री, जो प्रायः आर्य होते हैं, अपने वाद्ययंत्रों को बजाते हैं। जो विशेष राग अलापा जाता है उसे ढढ कहते हैं। श्मशान में लकड़ी की चिता चिनी जाती है जिसे ची कहते हैं। अरथी के साथ केवल पुरुष ही चलते हैं। चिता के गिर्द उसके (मृत व्यक्ति) सम्बन्धी ही फेरे लेते हैं। शव के जल जाने पर उसकी अस्थियों को चन्द्रभागा नदी में बहा दिया जाता है। केवल कुछ अमीर लोग ही अस्थियों को गंगा नदी में बहाने के लिए सुरक्षित रखते हैं। ऐसे लोगों की गिनती बहुत थोड़ी है।

तीन दिन तक सम्बन्धी उपवास रखते हैं। तीसरे दिन शुद्धि होती है। वस्त्र आदि धो लिये जाते हैं। उपवास तोड़ लिया जाता है। क्रिया जिसे पंगवाल 'कट्ठी' का नाम देते हैं तीसरे, नौवें या तेरहवें दिन की जाती है। नौवें दिन पुरोहित पत्थर पर मृत व्यक्ति की तसवीर उकेर कर पानी के पनिहार पर स्थापित करता है जिसे 'धाच्च' कहा जाता है। मास के बाद 'बड़ी कट्ठी' की जाती है। कट्ठी के दिन प्रजा को भोज दिया जाता है। सम्भव हुआ तो भेड़ या बकरी काटी जाती है। फिर वर्ष तक हर मास मृतक का संस्कार किया जाता है। वर्ष बीतने पर 'वर्षी' की जाती है। तत्पश्चात् शोक समाप्त हो जाता है।

लोक गीत

चन्द्रभागा वादी में प्राकृत छटा और मनोहारी हिमाच्छादित उच्च शिखरों के मध्य निवास करने वाले पंगवाल-जनजातीय लोग मनोरंजन प्रिय हैं। ऊंचे-ऊंचे हरे-भरे वन वृक्षों के मध्य उनके लोकगीतों के मधुर स्वर गूंजते हुए पहाड़ों को प्रतिध्वनित करते हैं। रात को वे अपने घरों में कथा-कहानियों को आपस में कह-सुन कर आनन्दविभोर होते हैं। मेले और त्यौहारों पर वे लोकगीतों की स्वरलहरी में नृत्य करते हैं। पंगवाल युवतियों की परम्परागत-वेशभूषा और आभूषण-जटित सौंदर्य मन मोह लेता है। ऐसे समय में उनके मुख से प्रेम और शृंगार गीत विगत स्मृति को अतीत से खींचकर कल्पित दृश्य को साक्षात् में परिणत करते हैं। उनके पांव की थिरकन दर्शक को मूक होकर एकटक देखने के लिए विवश करती है। धार्मिक अवसरों पर देवी-देवताओं के गीत गंभीर स्वरों में प्रस्फुटित हो हमें अपने मौखिक ज्ञान को अबाध रूप से सदा के लिए सतत् और शाश्वत रखने के लिए प्रेरित करते हैं। कथा-कहानियों का अथाह भण्डार हमारी परम्परागत ऐतिहासिक अनुश्रुतियों को समृद्ध बनाता है जिससे विस्मृत अतीत की कड़ियां खुलकर वर्तमान से जुड़ती हैं।

लोकगीत

पंगवाल-जनजातीय लोकगीतों का अथाह भण्डार निम्नलिखित रूप से विभाजित किया जा सकता है--प्रेम प्रधान गीत, धार्मिक गीत और सांस्कारिक गीत। यह विभाजन लोकगीतों के विषय के आधार पर है। प्रेम प्रधान गीतों में कुछ शृंगारिक गीत हैं और कुछ विरहगान हैं। इन गीतों को स्त्री और पुरुष दोनों अलग-अलग गाते हैं। स्त्रियां इन गानों को जब समूह में गाती हैं तो गाने के साथ-साथ नृत्य भी करती हैं। उस दशा में माध्यम के आधार पर वे इन्हें घुरैही गान कहते हैं। ये गान करुणाजनक विरहगान भी हो सकते हैं और मिलनगान भी। मिलन के समय प्रेमी आपस में आनन्दविभोर हो जाते हैं जिसका शृंगारिक वर्णन लोकगीतों में सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। विरहगान में

करुणाजनक और दुःखद घटना हो सकती है। मिलन की घड़ियों की प्रतीक्षा की जाती है। एक पल घंटे के बराबर लगता है। हृदय विदारक वर्णन श्रोताओं के आंसुओं की अविरल धारा को प्रवाहित करता है। मिलन की घड़ियों की प्रतीक्षा लगातार बनी रहती है। विरह पति-पत्नी का, पिता-पुत्र का, माता-पुत्र का और प्रेमी-प्रेमिका का भी हो सकता है। पंगवाल विछोही के लिए यह और भी विकट-रूप धारण कर लेता है जब हिमाच्छादित पर्वत शृंखलाएं विछोही के मार्ग में बाधा डालती हैं। उधर बरसात के घने बादल जब चन्द्रभागा की वादी को और भी रंगीन बनाते हैं तो ऐसी दशा में उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है। ऐसे में एकदम अपने प्रिय की याद स्वाभाविक तौर पर सताने लगती है। ऐसी दशा का वर्णन भी लोकगीतों के माध्यम से हुआ है।

पंगवाल

जनजाति का जीवन दुर्गम स्थान में होने के कारण संघर्षमय है। अतः लोकगीतों में श्रम प्रधान गीतों की संख्या भी कम नहीं। वे पसीने की एक-एक बूंद बहाकर जीवन निर्वाह करते हैं।

माध्यम के आधार पर पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले धार्मिक गीतों को अंचली की संज्ञा दी है। अंचली का विषय पौराणिक भी हो सकता है। पांडवों का जीवन चरित्र भी हो सकता है। ये गाने भी वाद्ययंत्रों की धुन पर झूम-झूम कर गाये जाते हैं।

सोपरियां विरहगान हैं। जैसे कि पहले संकेत दिया है कि विरह किसी का भी हो सकता है। सोपरियों में विलासमय वर्णन न होकर विरहमय है जो माता के लिए विदेश गए पुत्र या पति-पत्नी का भी हो सकता है। भाई-बहन का स्नेहमय जीवन भी हो सकता है। इन गीतों के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

गीत–

मेरी भोटलिये, असां जोता पुर बंगला पुआणा हो
मेरी भोटलिये असां.....
रघु गाडा हो, असां बंगले जो शीशे लुआणे हो
रघु गाडा हो असां.....
मेरी भोटलिए असां जोता जाई बंगले च रहण हो।

प्यारी भोटलिए, असां......
रघु गाडा हो तिते जाई बगीचड़ु लाणा हो
रघु गाडा हो, तिते जाई......
इत्यादि।

यह युगल लोकगीत है। रघु गार्ड और उसकी प्रेमिका पंगवालन भोटली के मध्य विलासमय जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा है। इस प्रकार के विलसित जीवन का लालच दे बहुत-से आगंतुक भोली-भाली युवतियों के शांत और निश्चिंत जीवन में खलबली डालकर गुमराह करते हैं। दूसरा गाना जो आम प्रचलित है यूं है—

असां पाडर जाणा—
असां पाडर जाणा जरूर हो असां पाडर जाणा
पाडर नीलमण खाना हो असां......
असां पाडर जाना जरूर हो—असां
पाडर सौहणे सौहणे माहणु हो, असां......
पाडर जाणा जरूर हो, असां......
इत्यादि।

एक अन्य गीत इस प्रकार है—
मेरा दिल लगा पांगी हो......
पांगी सुणादे तिल्ल मिल पांणी
मेरा दिल लगा पांगी हो
पांगी सुणादे भोटली रे नाचा
मेरा दिल लगा......
पांगी सुणादे छैल छैल नारा......
मेरा दिल लगा......
इत्यादि।

कुछ प्रगतिशील गीत भी पांगी में गाये जाते हैं जो यूं हैं—
कणक गराई सरकुंडे रे पधरे
जोडी हवाई जहाज सरकुंडे रे पधरे
बाबु दौलत राम सरकुण्डे रे पधरे
सारे महकमें सरकुण्डे रे पधरे

भोटलीरे नाच सरकुण्डे रे पधरे

इत्यादि।

स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद प्रथम चुनाव के समय पांगी के एम. एल. ए. बाबू दौलत राम थे, उस समय पांगी के लोगों को प्रथम बार हवाई जहाज से गेहूं की ड्रॉपिंग सरकुण्ड नामक किलाड़ के मैदान में की गई थी उसी समय का यह प्रगति गीत है। एक अन्य गीत–

बिजली लगी धीमो बिजली लगी हो
पांगी किलाड़े बिजली लगी हो,
सड़का बणी धीमो सड़का बणी हो
पांगी किलाड़े......

इत्यादि।

यह लोकगीत भारत की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के जनजातीय क्षेत्र पांगी के प्रथम दौरे के समय गाया गया था। किलाड़ आगमन के तीन मास पश्चात् उनकी जघन्य हत्या कर दी गई थी। गीत में पांगी क्षेत्र में हुई प्रगति पर प्रकाश डाला गया है।

एक पौराणिक अंचली गीत यूं है–

शिव होर गौरा वो पृथ्वी घेरे लो
हटदे दुनदे वो कजली बिजली बणे वो
कजली बिजली बणे वो रात भुई अंधरा वो
ला मेरे स्वामिया अमर कथा लाडाए हो
अमन गौरा वे मनणोरी नहीं वो
शिव लांदा अमर कथा गौरा लांदी हुंगेरे
इक लाई फक्की गौरा निंद्रे भरी वो
दूजी लाई फक्की स्वामी गौरा सावा सुप्त हो
वड़े केरे ऊप्पर तोता-मैना बैठे हो।

यह गाना पौराणिक कथा सम्बन्धी है और अन्य गानों से शैली, भाषा और विषय वस्तु के आधार पर पूर्णतया भिन्न है। ऐसे गाने ज्ञान भण्डार को पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में सुरक्षित रखते हैं। ऐसे गानों के लिए अनुसंधान अपेक्षित है। इस गाने में पार्वती के आग्रह का वर्णन है जबकि शिवजी उसको निर्जन वन में अमर कथा सुनाते हैं। पार्वती तो

सो जाती है मगर पीपल के पेड़ पर तोता-मैना कथा सुनकर अमर हो जाते हैं। शिवजी को यह ज्ञान नहीं था कि पार्वती के अतिरिक्त भी कोई इस कथा को सुन रहा होगा।

एक दुर्लभ घुरेई गीत निम्नलिखित है—

ये ई पाण्डवे आवारा वे माथे तलहांज फुलिय
अग्गे अग्गे मां कौन्ता पिछे पंज भाई पांडव
हटन्दे न फिरदें लो शिलेरी धारे
माई न कौन्ता त्रिहाए भारी लगीये
अलाला भियां वो पाणी जोग भेजे
हटन्दे न फिरदें वो भेणी रे धारे
भेण गणपता वां सिरे कंघी फेरदी
मिंदुषु पीणेकी वो भिरुकोरे भोले
भेण गणपता वो पाणी जोग गेईये

इस लोकगीत में पाण्डवों का पांगी में आगमन है। जब उनके बुरे दिन आए तो तलहांज वृक्ष असमय माघ मास में ही फूलने लगा। पाण्डवों के आगे-आगे कुंती माता चल रही थी उसके पीछे-पीछे पांच पाण्डव थे। शिलेरी धार पर उसे प्यास लगी। भीम बहन के घर पहुंचा तथा बहन गणपता से मिला। वह यह समझकर कि उसके पिणेकी (मायके के लोग) भिरकोरे (भूखे) होंगे समझकर पानी लेने गई।

एक उदाहरण **सोपरियों** का नीचे दिया जा रहा है। इस गाने की पंक्तियां दोहराई नहीं जातीं।

गीत—

दुःखयारआं ता भला दुःख भोगियारआं,
भोगे बडे दुःख माहाणु वे हिया भारेयरुरोगे।
हो दिला बोलन्दे हिया भारेयरु रोग हो
दिला बोलन्दा।

अर्थ—

दुःखी आदमी को दुःख होता है, भोगी आदमी भोग चाहते हैं, मुझे बहुत दुःख हो रहा है मेरा हृदय रोग से भर गया है।

इसी सोपरी की अन्य पंक्ति देखें—

कुईता भला मई बब थी प्यारी
भई थी रुशैणी घड़ी बताढ़े तारी
दिल बोलन्दे घड़ी बताढ़े तारी हो
दिल बोलन्दे।

अर्थ–लड़की तो मां-बाप को प्यारी थी। मगर भाई उसे प्यार नहीं करता था अतः अपनी बहन की जल्दी शादी करवा दी।

इसी सोपरी की तीसरी पंक्ति यूं कही है–

जां तकर थे मां बाब तां तकर कुइंया
पियो के भाड लगी भाई-भाणी बारी
वे लगा कांटेरी बाणा हो दिला बोलन्दे
लगा कांटेरी बाणा हो दिला बोलंदे।

अर्थ–जब तक मां-बाप थे तब तक मायके की आश (भाड) लगी रहती थी। जब भाई और भाभी की बारी आई तो मानों उन्हें कांटे का बाण लग गया।

लोक गीत

अंचली

धन राजा कर्ण बे धन राणी तुड़ सिए।
सौ सेरा सोना मणसी राजा भोजन खांदा बे
सौ सेरा झंकर मणसी राणी भोजन खांदी हो
अपु बो नारेणे बोहुवत कमाई हो
अपु बो नरेणे बे जोगी बाण बटाया हो
अपु बो नरेणे बे खंजरी बणाई हो
खंजरी देंदा छेड़ा बे खंजरी मूड़ा बजीये
अपु बे नरेणे वे धनराजे प्रोणी हो
द्वारे करदे छेड़ बे धनराणी निकड़िये
धनराणी तुड़सी बे फिरदी अन्दी गई हो
हीरा मोती थाड़ लई जोगी दान दिंदी हो
एयो न दान माई मुबो न लोड़ी हो।

अर्थ–धन राजा कर्ण और उनकी रानी बिना दान किये भोजन नहीं करते थे। धन राज कर्ण सौ सेर सोना दानकर भोजन करते थे तथा उनकी रानी तुलसी सौ सेर पायल का दान कर भोजन करती थी। इससे नारायण का अपयश फैलने लगा। अब नारायण ने योगी का वेश धारण किया और एक खंजरी ली। जब खंजरी बजाने लगे तो खंजरी नहीं बजी। अब नारायण स्वयं कर्ण के आंगन में पहुंच गए। उन्होंने द्वार खटखटाया। अन्दर से तुलसी रानी निकली। वह जोगी को देख कर वापस आई और मोती का थाल भरकर उस योगी को दिया जिसे उसने नहीं स्वीकारा।

अंचली

राम ते लछमण दिंदे पृथ्वी घेरा हो
हटंदे टुनंदे बो कजली बिजली बणे हो
सोरी दूनी ध्याणी रामे शिकार न मिले हो

संझे बेले रामे एक तीतर मारे हो
अबे भाई जतिया भुख लगी भारी हो
नदी किनारे धुएं कान्नो निकणीए हो
जा वो भाई जतिय तीतर भुन्नी जाएं हो।

अर्थ–राम और लक्ष्मण घूमने निकले। चलते-फिरते वे कजली-बिजली वन में पहुंच गए। सारा दिन राम को शिकार नहीं मिला, शाम के वक्त राम ने एक तीतर का शिकार किया। अब वह लक्ष्मण से कहने लगे भाई जति (लक्ष्मण) भूख बहुत लगी है। इस पर इधर-उधर देखने पर नदी किनारे धुआं चलता दिखाई दिया। तब राम ने कहा भाई लक्ष्मण जाओ और यह तीतर वहां भून कर ले आओ।

अंचली

जब थिंयूय पाण्डरू (पांडव) राज हो।
तब थिंयूय सेर अनाजेरी दाणा हो।
जब थिंयूय पाण्डरू राज हो।
तब थिंयूय चड़ीया दुध हो।
जब थिंयूय पाण्डरू राज हो
तब थिंयूय गीदड़ा शीड़ हो।
जब थिंयूय पाण्डरू राज हो
तब थिंयूय नौगज मरद हो।
जब थिंयूय पाण्डरू राज हो
तब थिंयूय सत गज जनाना हो।

अर्थ–जब पाण्डवों का राज था तब अन्न के दाने का वज़न एक सेर हुआ करता था।

जब पाण्डवों का राज था तब चिड़ियां भी दूध देती थीं।

जब पाण्डवों का राज था तो गीदड़ को भी सींग हुआ करते थे।

जब पाण्डवों का राज था तब आदमी का कद नौ गज ऊंचा हुआ करता था।

जब पाण्डवों का राज था तब औरत सात गज़ लम्बी हुआ करती थी।

विवाह गान

गंगा पारी दा हो व्याह लगदे
शिव स्वामी रा हो व्याह लगदे
लाड़े लाड़ी दा हो व्याह लगदे
चन्द्र-सूरज दा हो व्याह लगदे
उन ब्राह्मणे हो मिट्टी मंगाई
गौ गोहे केरा हो चौका लगाए
ब्राह्मणे दा हो वेदी लगाई
उस वेदी हो धर्म-कर्म कमाए
गंगा पारी दा हो व्याह लगदे
लाड़ा देखणेरा हो सोने केरा शीशा
लाड़ी देखणेरी हो सोने केरी सूई
गंगा पारी दा हो व्याह लगदे।

अर्थ–जब पंगवाल वर-वधु वेदी के फेरे लेते हैं उस समय औरतें आपस में मिलकर यह गाना गाती हैं। गंगा पारी का विवाह लगा है। लाड़ा लाड़ी का विवाह लगा है। चन्द्र सूर्य का विवाह लगा है। ब्राह्मण ने गाय के गोबर का चौका लगाया है। वेदी में धर्म-कर्म कमाए हैं। वह तो देखने में सोना लगता है और वधू सोने की सुई की तरह है। यहां उसकी शारीरिक सुन्दरता की उपमा एक सुई से की गई है।

घुरेही

हो कि लहोर कच्छे जलसा लगोरा हो
हो कि बाई राजे गठे होय हो
हो कि बुरे हुन्दे पहाड़ेरे राजे हो
हो कि बुरे हुन्दे पहाड़ेरे देवता हो
श्याम सिंह लहोर जो सदे हो
हो कि लहोर कच्छा जलसा लगोरा हो
हो कि परवाना रात दिन चले हो
हो कि परवाना से भूरिसिंह पढ़िया हो
सेइयो परवाना श्याम सिंह पढ़िया हो
हो कि श्याम सिंह तयार-पीठ होइये हो।

अर्थ–यह पंगवाल जनजातीय लोगों में गाया जाने वाला घुरेही लोकगीत चम्बा के राजा श्याम सिंह (राज्य काल सन 1873 से 1904 तक) के शौर्य से सम्बन्धित है। अनुश्रुति प्रचलित है कि राजा श्याम सिंह को लाहौर में जलसे के लिए बुलाया गया। वहां घुड़सवारी की एक प्रतियोगिता आयोजित की गई। वहां अन्य 22 रियासतों के राजा भी बुलाए गये थे।

कहते हैं घुड़सवार प्रतियोगी राजाओं ने पानी से भरी खाई को घोड़े की पीठ पर बैठकर छलांग लगा कर लांघना था। कोई भी राजा इसे लांघने का हौंसला न कर सका। राजा श्याम सिंह घोड़े की पीठ पर चढ़ गए। उन्होंने घोड़े को सर-पट दौड़ाया ही था कि उन्हें अपने साथ जटाधारी बालक बैठा दिखाई दिया।

राजा एक दम समझ गए कि शिवजी उनके संग हैं इसीलिए घुरेही के शब्दों में इंगित किया है, बुरे हुन्दे पहाड़ेरे देवता हो। इस पर राजा ने घोड़े को ऐसी चाबुक मारी कि घोड़ा एक दम हवा की तरह छलांग लगाकर खाई को लांघ गया। राजा उसकी पीठ से हिला तक नहीं। इसीलिए घुरेही में गाया जाता है–बुरे हुन्दे पहाड़ेरे राजे हो। इस पर एकत्रित समुदाय वाह-वाह कर उठा।

यह घुरेही इसी शौर्य का यशगान करती है। घुरेही का केवल यही अंश प्राप्त हुआ है अन्यथा घुरेही में पूरा यश-गान गाया जाता है।

इस लोकगीत में गाया जाता है–हो कि परवाना चम्बे पुजारे हो। हो कि परवाना से भूरि सिंह पढ़िया हो। सेयो परवाना श्याम सिंह पढ़िया हो। यहां परवाने का अर्थ लाहौर से आये संदेश से है। भूरी सिंह श्याम सिंह के राज्यकाल में उनके वजीर थे।

वह राजा श्याम सिंह के छोटे भाई थे। श्याम सिंह की मृत्यु के बाद वह सन् 1904 ई. को गद्दी पर बैठे और 1919 ई. को स्वर्ग सिधारे। घुरेही में–तैयार पीठ होए हो का अर्थ घोड़े पर चढ़ कर तैयार होने से है।

लोक कथाएं

पंगवाल-जनजातीय संस्कृति में लोककथाओं का भी अथाह भण्डार है। सर्दी के मौसम में वे घर की निचली मंज़िल में रहते हैं। सर्दियों के निर्वाह के लिए पर्याप्त लकड़ी इकट्ठी कर ली जाती है। चूल्हे के चारों ओर सभी बैठ जाते हैं। कथा-कहानी, लोक-गीतों और पहेलियों का दौर चला रहता है। इस प्रकार के मनोरंजन के साथ-साथ बड़ी उम्र के लोगों का अपना ऊन कातने, धागे लपेटने और ऊनी कम्बल, पट्टु आदि बुनने का कार्य अबाध गति से चलता रहता है। अल्पवय के बाल और बलिकाएं पशु-पक्षियों और परियों की कहानियों में अधिक रुचि लेते हैं। बड़ी उम्र के बच्चे और वयस्क देवी-देवताओं और राक्षसों की लोककथाओं में विश्वास रखते हैं। प्रायः देवी-देवताओं की कथाएं तथा मानव की राक्षसों पर विजय की कथाएं अधिक प्रचलित हैं। देवी-देवताओं की कथाओं में वासनी भगवती, जिसे टटन-माता के नाम से भी जाना जाता है, की कथा, मिंधला चांवड भगवती की कथा, दैंत नाग, जिसे लोग किलाड़ के हुणसाणा नाग से भी जानते हैं, की कथाएं अधिक प्रचलित हैं।

राक्षसों की कथाओं में टुंडा राक्षस की कथा, राणा मल्हा द्वारा कैद किये राक्षस की कथा जिसे छल कुकडी या शल कुकडी के नाम से भी जाना जाता है। यह कथा भी अधिक रोचक है।

अन्य राजा-रानी, जल परी, पक्षियों की कथाएं अनगिनत मात्रा में हैं जिन पर अलग से ग्रंथ-रचना की जा सकती है।

दैंत नाग की कथा

पांगी के किलाड़ नामक स्थान में दैंत नाग का एक मन्दिर है। पंगवालों में इस नाग की बहुत मान्यता है, सूखा पड़ने या अत्यधिक वर्षा होने की दशा में इसकी पूजा-अर्चना की जाती है। यह देव अन्नदाता और पशुधन का मालिक है।

कहते हैं इस देवता का मन्दिर लाहौल में था। यह मानव बलि लेता था। इसे हर परिवार बारी-बारी से एक मनुष्य की प्रतिदिन बलि देता था।

एक दिन एक बुढ़िया के अंतिम बालक की बारी आई। वह अपने अन्य पुत्रों की बारी-बारी से बली चढ़ा चुकी थी। वह पकवान बना रही थी और रो भी रही थी। इतने में कित्थु नामक एक गद्दी उसके घर मेहमान के तौर पर आया। उससे न रहा गया अतः उसने स्वयं को बलि चढ़वाना स्वीकार किया। दूसरे दिन प्रातः ही वह जुलूस के आगे-आगे चला। उसने कहा कि वह स्वयं नाग के समक्ष पेश होगा। यदि नाग सच्चा है तो वह औरों द्वारा काटने के बजाय उसे स्वयं खाए। नाग तो कुछ नहीं कहता था अतः उसने उस झूठे नाग की मूर्ति चन्द्रभागा में फेंक दी, लोगों ने चैन की सांस ली।

मूर्ति बहते-बहते पांगी गई। कहते हैं एक पंगवालन की गाय प्रतिदिन उस मूर्ति पर दूध गिरा आया करती। वह एक दिन चुपके से यह रहस्य जानने के लिए नदी किनारे पहुंची और सारा हाल देख लिया कि किस प्रकार वह मूर्ति नदी से निकल कर गाय का सारा दूध पी गई। उसने उस मूर्ति को पकड़ लिया।

अब वह नाग मनुष्य रूप में आकर फिर नदी में छिपने लगा और कहने लगा—"कहीं यहां कित्थु गद्दी तो नहीं"। पंगवालन ने कहा नहीं। नाग ने इच्छा प्रकट की कि वह उसे अपने गांव में ले चले और जहां भी मूर्ति भारी लगे वहीं उसकी स्थापना करे। वह महिला उसे पीठ पर उठाकर ले आई। किलाड़ के नीचे दो जगह उसने विश्राम किया लेकिन तीसरे स्थान हुणसाण से वह मूर्ति उठाई नहीं गई अतः वहीं नाग की स्थापना की गई बाद में वहीं पर मन्दिर का निर्माण किया गया।

भगवती विलीन वासिनी की कथा

जब-जब धर्म की ग्लानि होती है भगवान स्वयं जन्म लेते हैं। गीता के इस श्लोक के अनुसार देवी-देवता भी धर्म की रक्षा के लिए जन्म लेते हैं। कहते हैं कि करयास की पहाड़ी पर गोधन और खण्डव नाम के दो नाग रहते थे। वहां समय बीतने पर कुछ अन्य जातियां आ गईं और नागों की पवित्रता को भंग किया। उन नागों की प्रार्थना पर नेशर नामक व्यक्ति के घर माता ने जन्म लिया। माता चन्द्रभागा के किनारे कन्या रूप में घूमती रहती, अंछी नामक फल खाती और चकोर के अण्डों से खेलती।

कहते हैं उसकी अंछी फल खाने की इच्छा पूरी नहीं हुई अतः एक दिन वह गुफा में विलीन हो गई।

पिता अपनी कन्या के वियोग में तड़पता रहा। एक रात उसे स्वप्न हुआ। स्वप्न में माता ने संदेश दिया "मैं गुफा में विलीन हो गई हूं यदि आप मेरी सेवा करना चाहते हो तो मुझे दो समय भोजन ले आया करो।" कहते हैं जब उसका पिता भोजन ले जाता तो वह अपना हाथ गुफा से बाहर निकालती और अपना भोजन स्वीकार करती। यही क्रम कई वर्षों तक चलता रहा। जब उसका बाप बूढ़ा हो गया तो यह क्रम टूट गया।

पिता ने इस कार्य के लिए किसी और को नियुक्त किया। वह भी प्रतिदिन भोजन ले जाता। एक दिन जब माता ने अपना हाथ आगे बढ़ाया, उस व्यक्ति ने भावुकता में आकर माता का हाथ पकड़ लिया और वह वहीं जल कर राख हो गया। अब माता ने चट्टान से देवपुरुष की उत्पत्ति की। वह इस सेवा में कर्तव्य शील रहा परन्तु यह क्रम कुछ ही दिन चला।

आज भी यही परम्परा पुजारी की ओर से ज़ारी है। प्रतिदिन ऊनी-श्वेत वस्त्र पहनकर वह धवांस और त्रिशूल हाथ में लिए क्रियाशील रहता है। भगवती वहीं पर विराजमान है।

टुंडा राक्षस

पांगी क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों की तरह राक्षसों की कथाओं का बाहुल्य है, एक कथा है कि टुंडा-राक्षस दक्वास के सामने वाली चट्टान पर रहा करता था। उसकी एक टांग टूटी हुई थी, इसीलिए लोग उसे टुण्डा राक्षस कहा करते थे। लोक विश्वास है, कि एक टांग टूटी होने पर भी वह इतना शक्तिशाली था कि एक छलांग में दिल्ली पहुंच जाता था।

कहते हैं कि शिवरात्रि से एक दिन पूर्व वह छलांग लगाकर दिल्ली पहुंच जाता परन्तु दिल्ली दरवाज़े से आगे नहीं जा सकता था। क्योंकि वहां के पण्डित उससे आगे एक रामरेखा सी खींच देते थे अतः वह पांगी वापस आ जाता और आतंक मचा देता। लोग डर के कारण बाहर नहीं निकलते इसीलिए काशी से आए दो कहुं (जादूगर चेला) भाइयों ने पंगवाल लोगों को राम-रेखा खींचनी सिखाई ताकि टुण्डा राक्षस के आतंक से बचा जा सके।

इसीलिए पंगवालों में शिवरात्रि से दो दिन पहले खिड़कियों और दरवाजों पर कांटे लगाने की प्रथा है ताकि टुण्डा राक्षस अन्दर न आ सके।

राणा मल्हा और राक्षस

कहा जाता है कि पांगी में शक्तिशाली राणा मल्हा रहा करता था। मल्हियत गांव का नाम भी उसी राणा के नाम पर पड़ा है। राणा के बहुत से खेत थे जिनकी काश्त भी राक्षस लोग किया करते थे। राणा काले मटर की खेती लगाते थे। राक्षस लोग मटर की खेती को कभी-कभी उजाड़ जाया करते थे। एक बार, राक्षस के बच्चे मज़े से काले मटर खा रहे थे। उनके साथ छल कुकड़ी भी थी जिसे वे एक बड़े से पत्थर पर रख गए थे।

जब राणा वहां पहुंचे तो बच्चे तो डर से भाग गए परन्तु छल कुकड़ी वहीं रह गई। राणा छल कुकड़ी उठाकर घर ले आया।

जब बच्चों के माता-पिता ने देखा कि बच्चे छल-कुकड़ी छोड़ आये हैं तो वे राणा मल्हा के पास आये और छल कुकड़ी पांगी। राणा को बहुत गुस्सा आया और उसने राक्षस दम्पती को कैद कर लिया। वे राणा से पूछने लगे—"हमें कब रिहा किया जाएगा?"

राणा ने उत्तर दिया—"जब कभी मेरे घर में शुभ अवसर आएगा तुम्हें रिहा किया जाएगा।" कहते हैं वे राक्षस अब भी कैद हैं इसीलिए फुल-यात्रा के दिन शुभ राग के बजाए अशुभ राग बजाया जाता है ताकि राक्षस रिहा न हो सके।

एक पंगवाल और राक्षस

राक्षस भी कभी-कभी मनुष्य के मित्र साबित होते हैं। यदि वे दयालुता दिखाएं तो चमत्कारिक कार्य कर दिखाते हैं। इस प्रकार की यह लोक कथा सामान्यरूप से जनजातीय क्षेत्र भरमौर और पांगी में प्रचलित है। एक बार पंगवाल चम्बा जा रहा था। साच जोत के नीचे बगोटु नामक स्थान में उसे रात हो गई। वहां उसे मनुष्य रूप में राक्षसी मिली। उसने उसका आतिथ्य स्वीकार किया। जब वह सुबह अपनी यात्रा पर जाने लगा

तो उस राक्षसी ने अपने पति का हुलिया बताते हुए कहा कि आपने उनसे फलां स्थान पर चम्बा में मिल लेना।

अब वह समझ गया कि यह राक्षस परिवार है। उस औरत (राक्षसी) ने कहा कि मेरे पति को कहना कि घर पर कुछ भी खाने-पीने को नहीं हैं। इतना कहने के बाद उसने उस पंगवाल को आंखे बन्द करने के लिए कहा। उसने आंखे बन्द कीं। उस राक्षसी ने उसे छुआ और क्या देखता है कि वह चम्बा के चौगान में था। वह उस के पति से मिला। कार्य समाप्त होने के बाद उस राक्षस ने उसे कहा—"तुम जाते ही अपनी कच्ची पक्की फसल इकट्ठी कर लेना और जाते समय मेरी पत्नी को कहना कि वह आवश्यकता पड़ने पर तीन चोटें ढोल पर करे। उस को हर चीज़ मिल जाएगी।" और उसे आंखें बन्द करने के लिए कहा—अब उसने उसे छुआ। छूते ही उसने अपने आपको बगोटू नामक स्थान में पाया। उसने राक्षस का सन्देश उसकी पत्नी को दे दिया। उस राक्षसी ने फिर उसका आदर सत्कार किया। उसकी आंखें बन्द कराईं और चमत्कारिक ढंग से उसी समय घर पहुंचा दिया।

वह जैसे ही घर पहुंचा उसने अपनी कच्ची-पक्की फसल एकत्रित करनी आरम्भ की। आस-पास के लोग उसके पास आते और पागल कह कर पुकारते। वह चुप-चाप अपने काम में व्यस्त रहता। वह भेद नहीं खोल सकता था क्योंकि उसे भेद न खोलने की आज्ञा थी।

जब वह सारी फसल इकट्ठी कर चुका तो उस राक्षसी को चमत्कारिक तरीके से पता लग गया कि वह पंगवाल अपनी फसल इकट्ठी कर चुका है। राक्षसी ने ढोल पर तीन चोटें कीं तब मूसलाधार वर्षा और ओला-वृष्टि ने लोगों की फसल नष्ट कर दी और उस राक्षसी के घर अन्न के ढेर लग गए।

लोक नृत्य

पंगवाल-लोकनृत्य गाने के साथ भी किया जाता है और वाद्ययंत्रों की धुन पर भी किया जाता है। पांगी में पुरुष और महिलाएं अलग-अलग नाचते हैं। महिलाएं प्रायः गाती भी जाती हैं और नृत्य भी करती जाती हैं। ऐसे नृत्यों को घुरेही नृत्य से जाना जाता है। विशेष उत्सवों पर पंगवाल-महिलाएं परम्परागत वेश-भूषा में गाते, वृत्त में घूमते हुए नृत्य करती हैं।

नाचते समय पैरों की थिरकन और गान के स्वर में तालमेल बना रहता है। नृत्य करते समय उनकी भाव भंगिमाएं भी कलापूर्ण और आकर्षक होती हैं। घुरेही-नृत्य के गान का विषय प्रेमकथा, विरहगान, दुखांत और सुखांत कोई भी कथानक हो सकता है। नृत्य की गति समान रूप से बनी रहती है। यह मेलों, त्यौहारों और अन्य विशेष अवसरों पर किया जाता है।

पुरुष नृत्यों में एक वृत्त नृत्य है जो मेलों और त्यौहारों के समय किया जाता है। वेश-भूषा का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता। एक व्यक्ति बारी-बारी से गंड़ासा लेकर सबका नेतृत्व करता है। पांव आगे और पीछे चलते रहते हैं। बीच-बीच में 'हो हो' की ध्वनि उच्चारित की जाती है। ढोल की ध्वनि बराबर गूंजती रहती है।

सेन नृत्य

पुरुषों के वृत्त और महिलाओं के घुरेही नृत्य के अतिरिक्त एक अन्य प्रसिद्ध नृत्य सेन नृत्य है जो विशेष अवसर पर देवताओं की स्तुति के रूप में किया जाता है। नर्तक वाद्ययंत्रों की धुन में स्थानीय वेश-भूषा में देवताओं के स्तुति उपकरण लिये नाचते हैं, यह नृत्य वास्तव में देव-नृत्य है। पांव आगे से पीछे की ओर बराबर गति करते रहते हैं। बीच-बीच में देवता की स्तुति भी होती रहती है। यह नृत्य कथा विशेष पर आधारित है।

यह धारणा है कि एक बार एक राक्षस मनुष्य रूप धर कर नर्तकों

में शामिल हो गया। किसी नर्तक ने उसकी जांच कर ली कि यह मनुष्य न होकर कोई राक्षस है अतः नृत्य पीछे की ओर शुरु किया। राक्षस की पहचान हो गई। विश्वास है कि राक्षस पीछे को नृत्य नहीं कर सकते अतः उसे पकड़कर मार दिया गया। उस दिन से सेन नृत्य की शैली आगे से पीछे नृत्य करने की चली आ रही है। यह नृत्य आवश्यक तौर पर स्थानीय वेश-भूषा में किया जाता है तथा नृत्य स्थान प्रायः देवालय होता है।

भोट नृत्य

भोट लोगों के नृत्य भी अन्य पंगवाल लोगों से मिलते-जुलते हैं। उनकी महिलाएं नृत्य कला में विशेष प्रवीण हैं। भोटलीरे नाच का वर्णन लोक गीतों में किया गया है।

स्वांग नृत्य–पंगवाल जनजाति का कोई विशेष लोक नृत्य नहीं जिसका वर्णन किया जा सके। मेले और त्यौहारों के अन्त में मुखौटे लगाकर स्वांग नृत्य करने की प्रथा है जिसका अर्थ देवताओं की राक्षसों पर विजय है।

लोक वाद्य यन्त्र

वाद्य-यन्त्रों की सूची समान रूप से पांगी और भरमौर क्षेत्र में इस प्रकार है–

(1) ढोल (2) नगारा (3) पौंल (4) डमरू (5) करनाल (6) काहल (7) नरसिंगा (नरसिंघा) (8) ढौंस (9) ढोलकी (10) बांसुरी (11) नलगोजा (12) जंग (13) रैबान (14) दुबातरा (दोबात्रा) (15) हारमोनियम (16) खंजरी (17) भण (18) तुरी (19) शंख (20) घंटा (21) छंछाल (22) कांसे (23) शहनाई (24) घणथाल (घड़ा-थाली) (25) घड़्याल (26) चिमटा।

वाद्य यन्त्रों की बनावट और परिचय

ढोल

ढोल सबका परिचित वाद्य यन्त्र है। जन-जातीय लोग आम साइज़ के ढोल को प्रयोग में लाते हैं। पांगी के जन-जातीय लोग भरमौर की अपेक्षा बड़े आकार के ढोल को प्रयोग में लाते हैं। यह स्थानीय वाद्य-यन्त्रियों का प्रतिदिन प्रयोग में लाया जाने वाला वाद्ययंत्र है। जनजातीय लोग जन्म से लेकर मरण संस्कार तक ढोल का प्रयोग आवश्यक समझते हैं। विवाह संस्कार और मेले-उत्सव में ढोल का बजाना जरूरी समझा जाता है। ढोल और शहनाई हर संस्कार में काम में लाये जाते हैं। विवाह-उत्सव पर प्रयोग होने से पहले ढोल का मन्त्र उच्चारण के साथ पूजन किया जाता है इसे 'दुंदभी' पूजन कहते हैं। 'दुंदभी' में नगारे का पूजन किया जाता है।

परन्तु यदि नगारा उस समय उपलब्ध हो तो ढोल का पूजन किया जाता है। इस पर शुभ-अशुभ समय के राग अलग-अलग बजाये जाते हैं। विवाह-उत्सव, मेले और यात्रा के समय इस पर शुभ राग लगाये जाते हैं परन्तु मृत्यु संस्कार के समय इस पर अशुभ राग बजाए जाते हैं। 'गदेरन' (जन-जतीय क्षेत्र भरमौर) में किसी की मृत्यु हो जाने पर रात को अशुभ

राग में ढोल और शहनाई बजाई जाती है। इस अशुभ राग को 'ढढ' कहा जाता है। अरथी को श्मशान पर आग लगाने के समय तक 'ढढ' बजाई जाती है।

शुभ अवसर पर ढोल-शहनाई की ताल पर जन-जातीय लोग नृत्य करते हैं। डंडारस नृत्य ढोल और शहनाई पर नाचा जाता है। कभी-कभी ढोल के साथ एक नगारा भी प्रयोग में लाया जाता है। 'अंचली गान' के समय भी ढोल और नगारे का प्रयोग किया जाता है। नगारा न भी हो परन्तु ढोल अवश्य होना चाहिए। अब जब कि कहीं-कहीं 'अंग्रेज़ी बाजा' जिसमें वाद्य यन्त्री दल के पास बैंड का पूर्ण सामान होता है का प्रचलन हो गया है परन्तु ढोल और शहनाई फिर भी बजाई जाती है।

ढोल का निर्माण

स्थानीय वाद्य यन्त्री ढोल को स्वयं बनाते हैं। इसके लिए 'चिहर' चुल्ली-जंगली खुरमानी के तने की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। तने को वे खोखला कर लेते हैं फिर सुन्दर ढंग से तराशते हैं। तत्पश्चात् बकरे या बकरी की खाल दोनों ओर मढ़ देते हैं और ढोल तैयार हो जाता है। वे बाजार में बिकने वाले ढोल की अपेक्षा अपना बना ढोल श्रेष्ठ समझते हैं।

नगारा

जैसे कि पहले लिखा जा चुका है कि नगारे का होना भी जरूरी समझा जाता है। शुभ अवसर पर इसका पूजन होता है जिसे 'दुंदभी' पूजन कहा जाता है परन्तु यदि नगारा न भी हो तो भी दुंदभी पूजन ढोल को पूजकर मान लिया जाता है। उन दिनों जब बैंड इत्यादि की सुविधा उपलब्ध नहीं थी लोग बारात में नगारे को साथ ले जाना अपनी शान समझते थे। रजवाड़े के दिनों में केवल उच्च्य जाति के लोग ही नगारे (नगाड़े) का प्रयोग कर सकते थे। छोटी जाति के लोगों को नगारे का प्रयोग वर्जित था। बाद में रजवाड़े के दिनों में ही कुछ शुल्क देने पर नगारे का प्रयोग छोटी जातियों के लिए भी स्वीकृत कर दिया गया। नगारे को चलते समय आदमी की पीठ पर रखकर भी बजाया जाता है। मैदानी इलाके में नगारे को घोड़े की पीठ पर रखकर भी बजाया जा सकता है। पर्वतीय इलाकों में चमार जाति के लोग ही नगारे को उठाते थे क्योंकि

नगारों को गौ के चमड़े से मढ़ा जाता है अतः अन्य जाति का कोई भी व्यक्ति इसे नहीं उठाता था। अब तथाकथित निम्न वर्ग के लोग भी नगारे को नहीं उठाते। बारात में चलते-फिरते इसे बजाना असम्भव-होता है। अतः नगारे का प्रयोग आजकल केवल घर में ही सम्भव है।

नगारे की बनावट और निर्माण

नगारा ताम्बे का बना होता है। यह तबले की तरह जोड़ा होता है। इसे ठठियार बनाते हैं पर चमड़ा चर्मकार द्वारा मढ़ा जाता है। इसमें गौ का चर्म (चमड़ा) मढ़ा जाता है। साधारण चमड़ा इसके लिए उपयुक्त नहीं। अतः इसका निर्माण साधारणतया वाद्य यन्त्री द्वारा सम्भव नहीं। मन्दिरों में नगारे चढ़ाने की प्रथा है। अतः किसी-किसी मन्दिर में नगारे निजी प्रयोग के लिए उपलबध हो जाते हैं।

रण सिंघा

पुराने समय में एक-दूसरे पर हमला (आक्रमण) करते समय नगारे और रणसिंघे का प्रयोग करते थे। सरकारी कारदार कोठियों में रणसिंघा और नगारे रखे रहते थे। पहले रणसिंघा और नगारा केवल उच्च वर्ग के लोगों के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले साज थे। इन्हें या तो मन्दिर में बजाया जाता था या राजे और महाराजे या उच्च राजपूतों के उत्सवों में बजाया जाता था। युद्ध में भी इनकी आवाज सुनाई देती थी। समय के परिवर्तन के साथ इन साजों का प्रचलन हर वर्ग के लोगों में होने लगा। जनजातीय लोग इसे 'रणसिंगा' कहते हैं।

बनावट और निर्माण

रणसिंघा तांबे का बना हुआ होता है। इसका निर्माण स्थानीय ठठियारों द्वारा किया जाता है। आम प्रयोग के लिए इसे मन्दिरों से प्राप्त किया जा सकता है। मन्दिरों में रणसिंघा और नगाड़े चढ़ाये जाने की प्रथा प्रचलित थी।

पौल और डमरू

पौल डमरू की तरह का साज है। जहां डमरू छोटा होता है वहां पौल बड़े आकार का साज है। डमरू एक हाथ से बजाया जाता है। डमरू के साथ बजाने के लिये चमड़े के छोटे-छोटे दो बादक लगे होते हैं जो बजाते समय स्वयं गति में आकर साज को बजाने का कार्य करते हैं।

डमरू का प्रयोग केवल मन्दिर में ही होता है। पौल को गले में लटकाकर दोनों हाथ की उंगलियों से घिसकर बजाया जाता है। उंगली के घर्षण से इससे 'घूं-घूं-घूं-घूं' की ध्वनि निकलती है जो दूर-दूर तक सुनाई देती है। पौल का प्रयोग भी मन्दिर में होने वाले मेलों या उत्सवों तक सीमित रखा जाता है। इसे निजी उत्सवों में प्रयोग में नहीं लाया जाता। यह भी तांबे या लकड़ी का बना होता है।

करनाल

करनाल पीतल का बना लम्बे आकार का परन्तु आगे से खुले मुंह वाला मुंह से बजाया जाने वाला वाद्य यन्त्र है। इसमें फूंक देने पर 'भां-भां-भां-भां' की ध्वनि निकलती है।

काहल

काहल लम्बे आकार का, मुंह से बजाया जाने वाला साज है। इसे मन्दिरों में देवता की स्तुति में बजाया जाता है। इससे 'पां-पां' की ध्वनि निकलती है। इसका निजी उपयोग वर्जित है। यह तांबे का बना साज है। इस वाद्य को पांगी में मशनी कहते हैं।

ढौंस

ढौंस एक छोटा-सा ढोलनुमा साज होता है। इसे बजाने के लिए एक ओर टेडर लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग अशुभ घड़ी में किया जाता है या इसे मन्दिर में बजाया जाता है। इसके दोनों ओर बकरी का चमड़ा मढ़ा होता है। ढौंस-वादक भी वाद्य-यन्त्री की श्रेणी में आता है।

ढोलकी

ढोलकी भी किसी के लिए अपरिचित साज नहीं है। यह लघु आकार का ढोल है।

बांसुरी

बांसुरी को स्थानीय लोग 'वियुंशलीं' या 'ब्यूखलीं' के नाम से पुकारते हैं। कहीं-कहीं ढोल के साथ बांसुरी बजाने का प्रचलन है। बांसुरी वादक को बैंसी कहा जाता है। इस कारण 'बैंसीं' एक जाति वर्ग भी पैदा हो गया। बैंसी वाद्य यंत्रियों की एक श्रेणी है।

निजी तौर पर गद्दी-पाहल (भेड़ पालक) अपनी कमर में हर समय

बांसुरी लटकाये रखते हैं। भेड़-बकरी चराते समय जहां मर्ज़ी वहीं ऊंचे-टेट (पर्वत का ऊंचा स्थान) पर बांसुरी की तार छेड़ दी जाती है जिससे सारी घाटी गूंज उठती है। लेकिन जहां वाद्य-यंत्रियों के साथ बांसुरी बजाने का प्रश्न है वहां बैंसी जाति का व्यक्ति ही बांसुरी बजाता है। बांसुरी बांस 'नंगाल' (जंगली-पहाड़ी बांस) या पीतल की बनी होती है। पेशेवर लोगों के पास प्रायः पीतल की बनी बढ़िया प्रकार की बांसुरी होती है। जहां ढोल के साथ शहनाई वादक न हो वहां बांसुरी बजाकर ढोल की संगत की जाती है।

नलगोजु (अलगोज़ा)

इसका प्रयोग निजी तौर पर शौकिया किया जाता है। गुज्जर जनजाति इस वाद्य यन्त्र की विशेष शौकीन है।

रैबान / कांसे और खंजरी

ये तीनों वाद्य यन्त्र समान रूप से समाधा गायक के साज हैं। समाधा-गायकों में से एक व्यक्ति एक साथ रैबान और खंजरी बजाता है और दूसरा 'कांसें बजाकर उसका साथ देता है। रैबान को गले में लटकाया जाता है। बैठी दशा में खंजरी को गोद में दूसरी ओर टिकाया जाता है। रैबान के तारों को दायें हाथ से बजाया जाता है। साथ ही खंजरी को बायें हाथ से थापी मार-मार कर बजाया जाता है। दूसरा साथी कांसे इस प्रकार बजाता है कि रैबान/खंजरी और कांसे की ध्वनि में लय और ताल बना रहे। इसके साथ ही गाना भी गाया जाता है। इस प्रकार गाने और साज का ताल-मेल बना रहता है। वादक घर-घर जाकर पौराणिक गाने सुनाते हैं। पौराणिक और धार्मिक गानों के साथ-साथ आधुनिक फिल्मी और अन्य प्रेम-प्रधान गाने भी मनोरंजन के लिए सुनाये जाते हैं। इन गायकों को 'गुराहीं के नाम से जाना जाता है।

बनावट और निर्माण प्रक्रिया

रैबान लकड़ी का बना सितारनुमा साज है। बनावट में नीचे से अंडाकार होता है। ऊपरी भाग सितार की तरह पतला होता है। जिस पर निचले भाग से ऊपरी सिरे तक पांच तारें (चमड़े के बारीक तार) बिछी रहती हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार कसा और ढीला किया जा सकता है। इसे किसी बारीक तराशे लकड़ी के टुकड़े से बजाया जाता है जिसे खुरकूणी

कहा जाता है। खुरकृणी किसी धागे या तार के साथ लटकी रहती है ताकि इसे किसी भी समय बजाने के लिए प्रयोग में लाया जा सके।

खंजरी लकड़ी की बनी होती है जिसका सिरा चमड़े से मढ़ा हुआ होता है।

खंजरी और रैबान का निर्माण स्थानीय मिस्त्री या वादक स्वयं कर लेते हैं जबकि कांसे बने-बनाये बाज़ार से खरीद लिये जाते हैं। कांसे वादक-धातु के बने वाद्य यन्त्र होते हैं जिन्हें आपस में टकराकर बजाया जाता है। उनके बजाने से टुन-टुन की ध्वनि निकलती है।

दुबातरा (दोबात्रा)

बनावट

दुबातरा तुम्बे के साथ तारें लगाकर बनाया जाता है। इसके पेंदे में एक बड़ा तुम्बा लगा रहता है, सिरे पर एक अन्य छोटा तुम्बा लगा होता है, दोनों तुम्बों को मिलाने के लिए बीच में एक तराशी हुई लकड़ी लगी रहती है। उन्हें मिलाती हुई एक तार तनी रहती है जिसे हाथ में ऊंचा थाम कर उसी हाथ की उंगली से बजाया जाता है। इससे 'डियुं-डियुं' की ध्वनि निकलती है। गायक साथ-साथ गाना भी गाता जाता है। यह प्रायः योगी (जोगी) के हाथ में 'गुग्गेहल' उत्सव पर देखा जा सकता है। वादक को 'गाडीं कहा जाता है। जादू-टोने का इलाज करने वाले योगी, चेले या सौंरी 'नल्लीं डाली के माध्यम से इलाज करते हुए इसका प्रयोग करते हैं।

निर्माण

इसे वादक ही स्वयं बना लेते हैं। वादक स्थान-स्थान पर जादू-टोने के माध्यम से इलाज़ करते हैं। सिद्ध और नाथों का भी यह प्रिय वाद्य यन्त्र रहा है।

हारमोनियम

हारमोनियम स्थानीय वाद्य-यन्त्र नहीं है परन्तु इसका प्रचलन स्थानीय कथा वाचकों द्वारा आम किया जाता है। इसका निर्माण स्थानीय उद्योगशालाओं में असम्भव है, यह यन्त्र बाहर से बना-बनाया खरीदा जाता है।

भण

यह एक प्रकार की कांसे की थाली है जिसके सिरे पर पकड़ के

लिए एक कुण्डा लगा रहता है। इसे मन्दिर में देवी-देवता को प्रसन्न करने के लिए बजाया जाता है।

तूरी

तूरी का प्रयोग साधु-सन्तों द्वारा मन्दिरों में किया जाता है। इसे पांगी क्षेत्र में तुही कहते हैं।

शंख और घंटा

शंख और घंटे का प्रयोग प्रायः मन्दिरों में किया जाता है परन्तु मृत्यु के समय इनको श्मशान तक बजाया जाता है। यह प्रथा अन्य स्थानों पर भी है।

छंछाल

छंछाल बजाने की प्रथा मन्दिर में ही है ये भी कांसे की तरह के बड़े आकार के यन्त्र हैं।

शहनाई

जनजातीय शहनाई बनावट में राष्ट्रीय शहनाई से अलग है। यह साधारण लकड़ी से बनी होती है, जो नीचे से गोलाकार और ऊपर से गोल नली की तरह होती है। यह पूर्णतया पिंडाकार-सी लगती है। यह प्रायः स्थानीय सामग्री से बनी होती है। उत्सवों पर यह ढोल के साथ बजाई जाती है। यह अकेले में उस समय बजाई जाती है जब शहनाई-वादक घर-घर जाकर दाने मागंते हैं। शहनाई का उपयोग केवल वाद्य-यन्त्री लोग ही करते हैं।

जंग

यह एक स्थानीय 'माउथ औरगर्न है जिसे स्थानीय लोहार बनाते हैं। यह बनावट में नीचे से मोटा और ऊपर से पतला होता है। ऊपर का भाग एक पतली तार-सा होता है जिसके सिरे को गोलाकार दिया जाता है। आकार में यह छोटी-सी चिमटी की तरह का होता है। इसे मुंह में रख लिया जाता है केवल तार का कुछ भाग बाहर रखा जाता है। तार के सिरे को उंगली से हिला-हिलाकर बजाया जाता है। जिससे 'डियुं-डियुं' की ध्वनि लगातार निकलती रहती है। महिलाएं इसे डंगर और भेड़-बकरी चराते समय बैठकर बजाती रहती हैं।

इसका प्रचलन लुप्तप्रायः सा हो गया है। दूसरे अब जीवन में अधिक

व्यस्तता आने से गाने-बजाने के साधनों की ओर कम ही ध्यान जाता है। अब ऐसे साज-संग्रहालय की वस्तुएं बन गई है। 'कला-कला के लिए' की धारणा अब क्षीण हो गई है।

घणथाल (घड़ा-थाली)

अंचली के समय ढोल और घण-थाल वाद्य यन्त्र बजाये जाते हैं तथा लोक गायक दो-दो में बैठकर गाने की कड़ियां दोहराते हैं। साथ ही नर्तक एक-एक, दो-दो में बारी-बारी से नाचते जाते हैं। ढोल के साथ ही अन्य वादक घड़े या 'पारीं पर थाली रखकर एक पतली-सी लकड़ी से उसे बजाता है। इस घड़े-थाली को 'घण-थाल' कहा जाता है। घण-थाल के लिए कांसे की थाली का प्रयोग किया जाता है। नीचे रखे घड़े या पारी में पानी डाला जाता है। थाली को बजाते समय हाथ से कुछ ढीला पकड़ा जाता है जिससे उससे 'छें-छें-छर्प की आवाज़ निकलती है जो ढोल के साथ ताल-मेल रखते हुए बजाई जाती है। गायक को 'बन्दे' कहा जाता है। बन्दे संख्या में चार होते हैं वे दो-दो के ग्रुप में बैठते हैं। पहले ग्रुप के एक बन्दे के पास ढोल होता है। वह गाने की कड़ी को गाता है। दूसरे ग्रुप के एक व्यक्ति के पास 'घण-थाल' होता है। दूसरा ग्रुप गाने के स्वर को दोहराता है। इस प्रकार लोक-गाथा सारी रात गाई जाती है।

घड़याल

स्कूल की घंटी की तरह का यह वाद्य यन्त्र मन्दिरों में प्रयोग में लाया जाता है। इसे हथौड़ानुमा यन्त्र से बजाया जाता है। इसकी ध्वनि घंटे की तरह होती है।

चिमटा

चिमटे का प्रयोग कहीं-कहीं अन्य वाद्य यन्त्रों के साथ किया जाता है। कीर्तन के समय इसका प्रयोग आम होता है।

❑

तृतीय अध्याय

मेले और त्यौहार

मेले

विशेष भौगोलिक परिवेश में रहते पंगवालजनों के अपने मेले और त्यौहार हैं जिन्हें वे अपने विशेष वातावरण और रीति-रिवाज के अनुसार विभिन्न तिथियों को मनाते हैं। उनके मेलों में रंगीलापन होना स्वाभाविक है। नृत्य और गान का होना उनकी मनोरंजक प्रवृत्ति का परिचायक है। सब मेले किसी न किसी रूप में सर्वप्रथम किसी देवता के उपलक्ष्य में मनाये जाते हैं। देवता की विधिवत् पूजा-अर्चना की जाती है तत्पश्चात् मेला आरम्भ होता है। श्रद्धालु देवालय में जाकर अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हैं तत्पश्चात् मेले में शिरकत करते हैं। बलि देना प्रायः रिवाज-सा है। अतः भेड़-बकरी की बलि दी जाती है। मेले इतनी संख्या में हैं कि उन सभी का वर्णन करना असम्भव है फिर भी कुछ एक का वर्णन यहां किया जा रहा है।

सुराल नघोई का मेला

पांगी की सुरम्य सुराल घाटी में भाद्रपद की संक्रांति को शक्तिमाता के मन्दिर में एक मेला लगता है। इसमें आस-पास के गांव के लोग उत्साह से भाग लेते हैं। मेला दिन को होता है। दिन को पुरुष अपनी वेश-भूषा में ढोल और बांसुरी पर नृत्य करते हैं। औरतें रात को अपने घरों में नृत्य करती हैं और गाती हैं।

ईवान

यह मेला ईवान, उवान, ऊवान, उमान नामों से जाना जाता है। मेला किलाड़ तथा धरवास में तीन दिन तक मनाया जाता है। पहले दिन मेला राजा के निमित्त, दूसरे दिन प्रजा के लिए मनाया जाता है। तीसरा

वहां के नाग देवता के लिए मनाया जाता है। यह मेला हर वर्ष माघ और फाल्गुन मास में मनाया जाता है जिसमें स्थानीय लोग बड़ी श्रद्धा और उत्साह से भाग लेते हैं।

उनौनी (उनौणी)

उनौणी या उनौनी चार जगह मनाई जाती है—लुज, सुराल, करयूनी और करियास। लुज में यह मेला शीतला माता के मन्दिर में मनाया जाता है। सुराल में शक्तिमाता की पूजा की जाती है तथा मेले का आयोजन होता है। करियास में वलीन-वासनी भगवती की मान्यता स्वरूप इस मेले की प्रसिद्धि है। करयूनी में मलासनी भगवती की पूजा-अर्चना के बाद इस मेले का आयोजन होता है जिसमें पंगवाल जन श्रद्धा के फूल अर्पित करते हैं।

ये मेले अपने-अपने स्थान पर तीन दिन तक रहते हैं, लोग भेड़ व बकरी की बलि चढ़ाते हैं। नाचते और गाते हैं। यह मेला चैत मास में मनाया जाता है।

पारवाच्च

यात्रा को पांगी में जात्रा कहा जाता है। जात्रा को वे पुनः जाच्च, याच्च, याठ के उच्चारण से उसे स्थानीय रूप देते हैं। यहां पारवाच्च से अर्थ पुर्थी नामक गांव में देवी के निमित्त होने वाली जात्रा है।

इस मेले से एक दिन पूर्व लोग अपने घरों को लीप-पोतकर सुन्दर बनाते हैं। दूसरे दिन मेले का आयोजन होता है। लोग पांगी क्षेत्र के दूर-दूर के गांवों से आकर इस मेले की शोभा बढ़ाते हैं। वे रंग-बिरंगी वेश-भूषा में नाचते और गाते भगवती के मन्दिर में एकत्रित होकर अपनी श्रद्धा के सुमन चढ़ाते हैं।

पारवाच्च मानो सावन से असूज और कार्तिक मास में मनाये जाने वाले मेलों का आरम्भ है। अब अन्य गांवों में मेले मनाने का क्रम मानो पूर्व से पश्चिम की ओर ढलता जाता है। मानो मेलों का प्रवाह भी चन्द्रभागा के प्रवाह के साथ ऊपर से नीचे उतरता जाता है।

इस क्रम का अन्त किलाड़ में पांगी की अंतिम जात्रा-फुल जात्रा के साथ होता है जो असूज मास की 29 तिथि से चार दिन तक प्रति वर्ष मनाई जाती है। पारवाच्च के बाद अन्य मेले आरम्भ होते हैं।

थड़ोट

यह मेला पांगी के पूर्वी क्षेत्र में बसे गांव थांदल में देवता के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। गांव के लोग प्रातः ही उठकर नहाने-धोने के बाद मन्दिर में पहुंचते हैं। वहां पूजा-अर्चना करते हैं। अपने घरों में घी के दीप जलाते हैं। दिन को मन्दिर में मेले का विधिवत् आरम्भ होता है। चेला कांपता है। लोगों को देवता का संदेश देता है। वह सायंकाल को वृक्ष की एक-एक या दो-दो टहनियां तोड़कर सब यात्रियों को बांटता है। लोग नाचते-गाते वापस अपने घरों को आते हैं। कहते हैं कि इन टहनियों से घर की रक्षा होती है। इस प्रकार मेला सम्पन्न होता है।

सच्चे जाच्च

यह मेला पांगी के सुप्रसिद्ध गांव साच में होता है। साच गांव चन्द्रभागा नदी के दायीं ओर लगभग सात हज़ार फुट की ऊंचाई पर किलाड़ से चौदह कि॰मी॰ के फासले पर पूर्व की ओर स्थित है। यह गांव हरे-भरे जंगलों के मध्य स्थित है। नीचे गहरी घाटी में चन्द्रभागा अपने धवल जल को लिये द्रुतगति से प्रवाहित होती है। साथ ही पूर्व की ओर सेचु नाला तीव्र गति से प्रवाहित होता चन्द्रभागा नदी में विलीन हो जाता है।

सामने नदी के उस पार पांगी की सर्वमान्य अधिष्ठात्री माता मिंधला का मन्दिर दिखाई देता है। गांव में जोगेश्वर नाग, प्रौढ़नाग और शिवजी के देवालय हैं जो पंगवाल-जनों की धार्मिक प्रवृत्ति के द्योतक हैं। गांव में स्वास्थ्य विकास तथा शिक्षा की सुविधा के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सालय, बिजली विभाग और सड़क निर्माण विभाग के कार्यालय तथा उच्च विद्यालय भी है। लोग श्रद्धालु और परिश्रमी हैं।

यहां भादों मास की पूर्णिमा के बाद नवमी तिथि को मेले का आरम्भ होता है। लोग पूजा-अर्चनार्थ इन तीनों देवालयों में जाते हैं। जोगेश्वर नाग और प्रौढ़ नाग को बलि दी जाती है। अब लोग वापस घर आते हैं तथा दोपहर को कुछ दूरी पर अवस्थित माहल नाग के मन्दिर में पूजा-अर्चनार्थ जाते हैं। वहां से फूल और वृक्ष की हरी टहनियां अपने हाथों में लेकर, शोर करते और सीटियां बजाते वापस जोगेश्वर नाग और प्रौढ़ नाग के मन्दिर में एकत्रित हो जाते हैं। वहां जोगेश्वर, प्रौढ़, माहल,

पिन्यार और धारें नागों का मिलन होता है। दिन को यहां खूब नृत्य किया जाता है। शाम को सभी उन लाये फूल और टहनियों को शार करते समीप के स्थान विशेष में छोड़ अपने-अपने घर चले जाते हैं। दूसरे दिन पुनः उस भेड़ की बलि की पत्तियां (हिस्से) सम्बन्धित परिवारों में बांटी जाती हैं। दिन को पूर्वदिनवत् नाच-गाने के बाद मेला सम्पन्न होता है।

कुठलयाच्च

कुठल नामक गांव में साच जात्रा के बाद एक मेले का आयोजन होता है जिसे कुठलयाच्च कहते हैं। यह मेला जरहिंयू नाग के निमित्त मनाया जाता है। लोग अपने-अपने घरों में घी के दीप जलाते हैं। तत्पश्चात् वे देवता के मन्दिर में विधिवत् पूजा करते हैं तथा बलि देते हैं। दिन को अन्य मेलों की तरह नाचगाना होता है।

घिसलयाच्च

घिसल गांव में नाग के उपलक्ष्य में अन्य मेलों की तरह मनाया जाता है।

हिनरयाच्च

यह मेला हिलोर गांव में मालदेवी के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। मेला रात-दिन चलता है। दूर-दूर से लोग आकर बलि देते हैं और भगवती के चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। दूसरे दिन वे सभी अपने-अपने घरों को वापस जाते हैं।

पिनयाच्च

यह मेला चस्क नामक गांव में आयोजित होता है। यह दो दिन चलता है। पहले दिन के मेले को मठणी पिनयाच्च कहते हैं। इस मेले में अधिक भीड़ रहती है। शाम को लोग अपने घरों में घी के दीप जलाते हैं।

शूड़याच्च

शूड़याच्च शूड़ गांव में मनाया जाता है। यह मेला भी देवी के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। शूड़ भगवती-परिवार की नौ बहनें हैं। वे हैं शूड़, हिल्लोर, मिंधल, पुर्थी, बैरागढ़ (चुराह) आदि।

मिनलयाच्च

मिंधला भगवती पांगी क्षेत्र की अत्यन्त प्रभावशाली और चमत्कारी

अधिष्ठात्री देवी है, ऐसा स्थानीय लोगों का विश्वास है। इसीलिए दूर-दूर से लोग यहां देवी की मान्यतार्थ आते हैं। यहां भादों मास में तीन दिन के लिए मेला लगता है जिसे मिलयाठ मिनलयाच्च से जाना जाता है। ये मेला रात-दिन लगता है। मेले में दो रथों का आगमन होता है। एक हाकम का रथ और दूसरा रंगोली का रथ।

रथ के आगमन के बाद चेला (देवी का संदेशवाहक) एक बड़ी मशाल लेकर मन्दिर के आगे मैदान में रख देता है। तत्पश्चात् कुलाल और फिंडपार के लोग घियाणें के लिए लकड़ी एकत्रित कर और घियाणा जलाकर अपना कर्तव्य निभाते हैं। सारी रात खूब घियाणा जलता रहता है। इसके बाद देवी का चेला ठाठणी पींठ (दयार की टहनी या छोटा वृक्ष) लेने जाता है। एक वर्ष पींठ लायी जाती है और दूसरे वर्ष देवी के विशेष बर्तन गड़वे में विशेष स्थान से पानी लाया जाता है अतः पींठ या गड़वा लाने की बारी हर तीसरे वर्ष क्रमशः आती है। सारी रात ढोल और बांसुरी बजती रहती है। श्रद्धालु नृत्य करते हैं। चेला कांपता है तथा देवी का सन्देश लोगों को देता है। जम्मू-कश्मीर और लाहौल के क्षेत्रों से भी लोग आते हैं। भेड़-बकरों की पर्याप्त संख्या में बलि दी जाती है। लोग धूप, लाल कपड़ा (शॉड) और त्रिशूल मन्दिर में चढ़ाते हैं। कुछ लोग चांदी के बने छत्र देवी को चढ़ाते हैं। पैसे चढ़ाने का रिवाज भी लोगों में प्रचलित है।

फुलयाच्च

फुलयाच्च या फुलजात्रा पांगी तहसील के मुख्यालय किलाड़ में 29 आश्विन से आरम्भ होकर चार दिन तक धूमधाम से मनाई जाती है। यह मेला पांगी क्षेत्र का सबसे बड़ा मेला है। इसमें धरवास, सुराल, लुज मुख्यतः भाग लेते हैं। यात्रा का आरम्भ कुफा गांव से होता है। चेला कांपता है। कांपते हुए वह छल-कुकड़ी सबको दिखाता है। वाद्ययंत्री ढढ-राग आलाप कर मेले का आरम्भ करते हैं। ढढ-राग शोक धुन है।

ढढ बजाने और छल कुकड़ी दिखाने के पीछे एक अनुश्रुति है। कहा जाता है कि पुराने समय में पांगी क्षेत्र में राक्षसों का बोल-बाला था। किलाड़ में एक राणा शासक थे। वह अपने खेतों में काले मटर की खेती लगाते थे। राक्षस आकर उसे उजाड़ जाते।

एक दिन राक्षस के छोटे बच्चे मटर खा रहे थे। उनके साथ छल-कुकड़ी (मुर्गी) भी थी। राणा ने उन्हें पकड़ लिया। दूसरे दिन राक्षस के माता-पिता आये। राणा ने बच्चों को तो छोड़ दिया परन्तु उनको कैद में रखा। साथ ही छल कुकड़ी को भी काबू में रखा। उस राक्षस युगल ने राणा से रिहायी मांगी। राणा ने आश्वासन दिया कि जब मेरे घर में शुभ अवसर आयेगा तो उन्हें रिहा कर दिया जायेगा साथ ही छल-कुकड़ी भी दे दी जायेगी।

लोगों का विश्वास है कि वह युगल अब भी बंदी है। यदि शुभ धुन बजाई गई तो उनकी रिहाई का खतरा रहता है अतः वाद्ययंत्री अशुभ-धुन बजा कर उन्हें अभी तक रिहाई न होने की याद दिलाते हैं। छल-कुकड़ी इसलिए दिखाई जाती है कि वे आश्वस्त रहें कि उनकी धरोहर अभी तक सुरक्षित है। मेले में पंगवाल नृत्य और अन्य रंगारंग कार्यक्रमों का आयोजन होता है। चौथे दिन यात्रा दैंत-नाग के मन्दिर में होती है। नाग को बलि चढ़ाई जाती है। मेले के अन्त में मुखौटे पहनकर स्वांग नृत्य भी किया जाता है।

इस प्रकार गर्मी का यह मेला सम्पन्न होता है परन्तु मिंधला में अभी और मेला भी होता है जिसे शेर-जाच्च कहते हैं।

शेर जाच्च

यह मेला प्रायः 24-25 अक्टूबर को मिंधला भगवती के उपलक्ष्य में मनाया जाता है जो गर्मियों का अंतिम मेला है। लोग दूर-दूर से आकर भगवती के दीपक के लिये सौ-सौ या पचास-पचास ग्राम घी अपने सामर्थ्यानुसार चढ़ाते हैं तथा शुभ कामना की मन्नत करते हैं। लोग दूर-दूर से श्रद्धासुमन चढ़ाने आते हैं।

भोट मेले

दखैण

वैसे तो भोट पंगवाल मेलों में सक्रिय भाग लेते हैं परन्तु अपनी संस्कृति को जीवित रखने के लिए वे अपने तौर-तरीकों से भी अपनी भुटोरियों में समय-समय पर मेलों का आयोजन करते हैं। इन मेलों में उनका प्रसिद्ध मेला दखैण है जो श्रावण मास की तीन और चार तारीख

को मनाया जाता है। पगवाल जन इस मेले में सक्रिय भाग लेते हैं।

श्री सत्येन्द्र राज गुप्ता ने मुझे भेंटवार्ता में बताया कि भोट मेलों में बटडुबाट और 'टोटु-बाटी' के मेले प्रसिद्ध हैं, जो भोट संस्कृति से जुड़े हैं। उनकी संस्कृति से एक अन्य मेला ग्यूण है। इन मेलों के सम्बन्ध में उन्होंने लेखक को एक लोककथा का संदर्भ दिया।

उनके अनुसार टुंडरु गांव में(हुडान क्षेत्र) एक शाणा नामक व्यक्ति रहता था। उसकी तीन पुत्रियां थीं। उनके नाम पुन्सी, कुंगी और अण्डारी थे। पुंसी बड़ी होकर शिव कैलाश, जरहिंयु चली गई। कुंगी जंसकर चली गई। अब उसके पास केवल अण्डारी ही रह गई। अण्डारी छोटी होने के नाते पिता को अत्यन्त प्यारी थी। अन्त में वह भी सलाह पहाड़ पर चली गई। उसने पिता को प्यार वश कहा कि हर सात वर्ष के बाद मेरे उपलक्ष्य में 'ग्यूण' मेले का आयोजन किया जाये जहां हमारा मिलन हुआ करेगा। हर सातवें वर्ष सलाह पर्वत पर मेले का आयोजन होने लगा क्योंकि उसने संदेश दिया था, "मैं सलाह पर्वत पर नागन के रूप में हूं"।

किसी कारण उसके आदेश के पालन का क्रम टूट गया अतः वह सलाह पर्वत से निर्वासित होकर शंख पर्वत पर चली गई। अब सलाह पर्वत पर पानी सूख गया अतः फिर हर सात वर्ष के बाद मेले का आयोजन सलाह पर्वत पर होने लगा। लोग अपने चूंर लेकर वहां आते हैं पर अपने चौरमुट्ठे अण्डारी के सम्मान में शंख पर्वत की ओर घुमाते हैं। यह मेला भाद्रपद की पूर्णिमा के बाद शुक्रवार को होता है।

पुन्सी और कुंगी के उपलक्ष्य में बटडुबाट और टोटुबाटी के मेले आयोजित किये जाते हैं और दखैण के साथ मनाये जाते हैं। इस प्रकार दखैण मेला चार दिन तक चलता है। भोटों की अन्य भुटोरियों में भी छोटे-बड़े मेले आयोजित होते रहते हैं।

त्यौहार

पंगवाल जनजाति के लोग धार्मिक उत्सव में अटूट विश्वास रखते हैं। वे समय-समय पर अपने धार्मिक तीज-त्यौहार मनाने में व्यस्त रहते हैं। उनके लिए प्रकृति भगवान् का संदेश लेकर आती है। बदलता प्राकृतिक—परिवेश उनके लिए एक नया संदेश लेकर आता है। वे ऐसे समय हर्ष और उल्लास मनाते हैं और विधिवत् पूजा-अनुष्ठान करने के बाद जीवन को सार्थक समझकर आनन्द मनाते हैं। इन त्यौहारों में कतिपय निम्नलिखित त्यौहार हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है—

उत्तरायण (उटैण)

जब सर्दी का मौसम अपना विकराल रूप धारण कर लेता है, बाहर बर्फ के अम्बार लगे होते हैं, बर्फानी हवा जिस्म को चीरती हुई निकल जाती है उस समय वे उत्तरायण का त्यौहार मनाना नहीं भूलते। इस त्यौहार को वे उटैण से उच्चारित करते हैं। उटैण वास्तव में पितृपूजन का त्यौहार है।

इस दिन वे तरह-तरह के पकवान बनाते हैं। परिवार का मुखिया मन्दिर में जाकर पितृपूजन करता है। यह पौष या माघ मास में मनाया जाता है और सर्दियों का पहला त्यौहार होता है।

बार

पौष मास के अंतिम शुक्रवार को बार का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन हवन किया जाता है। यह त्यौहार हर तीसरे वर्ष मनाया जाता है। घरों में तरह-तरह के पकवान बनाये जाते हैं। औंस (एक विशेष प्रकार का पकवान) और हलवा सगे-सम्बन्धियों में बांट कर खाया जाता है।

दखैण

यह लड़कियों का त्यौहार है। इस दिन विवाहित लड़कियां फिर मायके आ जाती हैं। यह त्यौहार धाण्डैई के तेरह दिन बाद आता है। इस दिन लड़कियों का पूजन किया जाता है। इस त्यौहार के लिए सोपरी के शब्द यूं हैं—

"धाँडेई ता दखैण दो कुई त्याहार
धाँडेई खा भाइया अप्पू वे पर दखैण धामे।"

उजैणी

यह त्यौहार पांगी में हर जगह मनाया जाता है, परन्तु किलाड़ में इसे मनाने की प्रथा नहीं है। मन्दिर में पूजा-अर्चना की जाती है। तत्पश्चात् लोग नागनी के पानी के स्रोत पर सत्तू और मक्खन ले जाते हैं। सत्तू और घी के गोले बनाकर प्रसाद रूप में बांटते हैं। गोलों के साथ सौ-सौ ग्राम घी भी दिया जाता है। लोग इस प्रसाद को श्रद्धा और सम्मान के साथ स्वीकार करते हैं।

चजगी और खोल या लौहणी

पांगी में चजगी का त्यौहार बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। यह त्यौहार उत्तरायण के एक मास बाद माघ मास की पूर्णिमा को आता है। शाम को छः बजे के करीब लोग मशालें लेकर देवी और शिव के मन्दिर में जाते हैं। वाद्ययंत्री साथ होते हैं। किलाड़ में पहले बड़ा मशायरा देवी के मन्दिर में रखा जाता है। जब यह बुझ जाता है तो अन्य मशायरा शिव मन्दिर में चढ़ाया जाता है तत्पश्चात् लोग हर्ष व उल्लास के साथ चौकी आ जाते हैं फिर अखरोट के वृक्ष पर जलते मशायरे फेंकते हैं। उनका विश्वास है कि जिसका मशायरा पेड़ को छू कर वहीं ऊपर रुक जाये तो उसके घर पुत्र पैदा होता है। इस के बाद लोग अपने-अपने घर वापस आ जाते हैं।

साच परगना में इस त्यौहार को 'खोल़' या 'लौहणी' के नाम से जानते हैं। वे इस दिन प्रातः नाग के मन्दिर में भंगड़ी के बकरे चढ़ाते हैं और आपस में बांट कर खाते हैं। पांगी में क्षेत्र भिन्नता के आधार पर इसके मनाने में भी भिन्नता पाई जाती है। यह त्यौहार फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है, यह लौहणी के नाम से भी जाना जाता है।

सामल

यह त्यौहार खोल़ (लौहणी) के ठीक सात दिन बाद साच में मनाया जाता है। किलाड़ में इस त्यौहार को मनाने का प्रचलन नहीं है। साच में इसे मनाने की जो प्रक्रिया है वह किलाड़ में शिवरात्रि को अपनाई जाती है। साच के लोग सामल के दो दिन पहले अपने घरों को खूब कलात्मक

ढंग से सजाते हैं। वे लाल और काली मिट्टी से घर की लिपाई-पोताई करते हैं। घर के बड़े कमरे को खूब लिखा जाता है। कमरे के चारों कोनों पर त्रिशूल चित्रित किये जाते हैं। फिर कमरे की चौरस रूप से चित्रकारी की जाती है। घर की अंदरूनी छत को भी सफेद मिट्टी से चित्रित किया जाता है।

सामल की संध्या को पकवान बनाकर रख लिये जाते हैं। उस दिन जल्दी ही खान-पान कर लिया जाता है और लोग घरों में घुस जाते हैं। दरवाज़ों और खिड़कियों पर कांटे लगा दिये जाते हैं। अंधेरा होने पर एक जलती मशाल खिड़की से बाहर फेंक दी जाती है। अब कोई भी बाहर नहीं निकलता। लोगों का विश्वास है कि ऐसा न करने से सामल नानी (एक डायन) अन्दर घुस आती है और जान व माल को हानि पहुंचाती है। प्रातः जल्दी उठकर पूजन का प्रसाद आपस में बांट कर खाया जाता है।

शिवरात्रि

यह त्यौहार पांगी में हर जगह मनाया जाता है। इस दिन लोग व्रत रखते हैं। किलाड़ के लोग इस दिन अपने घरों की छत पर एक लिखावट करते हैं। वे एक ओर टुंडा राक्षस का चित्र बनाते हैं और दूसरी ओर राम का चित्र तीर-कमान लिए बनाते हैं। तीर-कमान टुंडा राक्षस की ओर साधे होना चाहिए। उस चित्रकारी के नीचे एक छोटा-सा दयार का वृक्ष चित्रित किया जाता है जिस पर श्वेत चकमक के पत्थर रखे जाते हैं। आंगन में भी चकमक पत्थर स्थान-स्थान पर रखे जाते हैं। लोक विश्वास है कि ऐसा करने से राक्षस अन्दर नहीं घुसने पाता। दरवाज़े और खिड़कियों पर कांटे लगा दिये जाते हैं। रात को कोई भी व्यक्ति बाहर नहीं निकलता।

सारा दिन व्रत रखा जाता है। रात को फलाहार-आलू, दूध, फुल्लन और सियूल के पकवान खाये जाते हैं।

सिलह

सम्पूर्ण पांगी में यह त्यौहार खूब धूमधाम से मनाया जाता है। यह त्यौहार फाल्गुण और चैत मास की अमावस्या को मनाया जाता है। इस त्यौहार से दो-तीन दिन पूर्व घर की लिपाई की जाती है। घर में लिखावट की जाती है। बलिराज के चित्र बनाये जाते हैं। उस दिन शाम को भंगड़ी

के बकरे बनाकर पूजे जाते हैं। घर में घी के दीपक से रोशनी की जाती है। बलिराज का चित्र बनाकर पूजन किया जाता है। रात को जल्दी ही लोग सो जाते हैं। लोक विश्वास है कि उस रात को किसी प्रकार का शोर नहीं करना चाहिए। टक-टक, ठक-ठक की ध्वनि नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से महाराज बलि का सिर फट जाता है।

इस दिन लोग प्रातः ही उठकर अपनी भेड़-बकरियों पर पानी का छिड़काव भी करते हैं। मन्दिर जाते हैं। रात को बलिराज का चित्र रखकर घी का दीपक जलाते हैं तथा दिन को पकाया सारा पकवान दीप के गिर्द रख देते हैं। रात को चरखा कातना भी बन्द रखा जाता है। रात को लोग पूजन के बाद जल्दी ही सो जाते हैं ताकि देवता को किसी प्रकार का विघ्न न हो।

पड़ीद

अब लोग प्रातः चार बजे के करीब उठकर चश्मे से पानी लाते हैं। पानी उल्टे होकर भरा जाता है। उल्टे होकर पानी भरने के पीछे एक रहस्य छिपा है। कहा जाता है कि माहलियत गांव में एक मल्हा नामक राणा शासन करता था। साथ के गांव कुफा में एक ठाकुर भी शासक था। उन दोनों में शत्रुता थी। पड़ीद के दिन राणा प्रातः ही चश्मे से पानी भरने लगा कि पीछे से उस ठाकुर ने राणा पर वार कर दिया। राणा बाल-बाल बचा अतः प्रथा कायम हुई कि पानी भरते समय सतर्कता बरती जाये। राणा के बचने पर लोग गले मिले अतः त्यौहार का नाम पड़ीद पड़ा। इस दिन लोग प्रातः ही उठकर पूजन के प्रसाद को आपस में बांटकर खाते हैं। सभी गले मिलते हैं। बड़ों के चरण स्पर्श करते हैं।

जुकारु–

अब जुकारु आरम्भ होता है। जुकारु का अर्थ बड़ों के आदर से है। यह आदरसूचक शब्द है। लोग एक दूसरे के घर मिलने जाते हैं। इस त्यौहार का दूसरा सन्दर्भ यह है कि सर्दी और बर्फ से अब तक लोग अपने घरों में बन्द थे। अब मौसम खुल जाता है अतः लोग एक दूसरे के गले मिलते हैं, गले मिलने के बाद लोग एक दूसरे से पूछते हैं–तकड़ा थियां और फिर जुदाई के शब्द होते हैं–"मठे-मठे बीरो या मठे-मठे विश"–। लोग सबसे पहले अपने बड़े भाई (भियाण) के पास जाते हैं फिर अन्य सम्बन्धियों से

भेंट करते हैं। यह मिलन कार्यक्रम कई दिन तक चलता है।

पुन्हैई

किलाड़ में पड़ीद के तीसरे दिन यह त्यौहार मनाया जाता है। परिवार का एक-एक सदस्य प्रातः ही गांव के खेत में बनी धज्जी का पूजन करने जाता है। वे जलती मशालें ले जाते हैं और वहां डालते हैं। साथ ही हलवा और लुच्ची भी लाते हैं। भंगड़ी के बकरे भी लाये जाते हैं। सत्तू के रोट भी प्रसाद रूप में रखे जाते हैं। अब खेत के आंशिक भाग को साफ कर बीज बोये जाते हैं। इस दिन बीज बोना शुभ माना जाता है ताकि जब भी खेत खाली हों खेत में फसल लगाई जा सके। तत्पश्चात् प्रसाद आपस में बांटकर खाया जाता है। खेत बर्फ से ढके होते हैं अतः फसल लगाना अभी सम्भव नहीं होता परन्तु शास्त्र विधि से पुन्हैंई से बीज बोकर फसल बीजने का आरम्भ माना जाता है।

माङ्गल

साच के लोग प्रातः ही उठकर जुकारु के दूसरे दिन मांगल त्यौहार मनाते हैं। इस दिन सब लोग नहा-धोकर खेत में धच्ची की पूजा के लिए प्रसाद आदि ले जाते हैं। घर का मालिक अपने घर में पूजा इत्यादि करता है। सूर्य निकलने पर वह भी मशाल लेकर धच्ची के पूजन के लिए पहुंचता है। सभी लोग अपनी-अपनी मशालें वहां जलने के लिए डाल देते हैं। आटे के बकरे, सत्तू के टोट और हलवे तथा लुच्ची से धरती का पूजन किया जाता है। बाद में उसे इकट्ठा कर खाया जाता है। पूजन के साथ ही आटे के बनावटी बैलों से हल चलाने का अभिनय करके खेत में बीज बोया जाता है।

साच में जब मांगल के समय सभी मर्द धरती पूजन के लिए खेत में चले जाते हैं तो घर की मालकिन घर में ही रहती है। वह अन्दर से दरवाज़ा बन्द करके बैठी रहती है। जब घर का मालिक वापस घर आता है तो घर का दरवाज़ा खटखटाता है। अन्दर से आवाज़ आती है–कौन।

मालक–"मांगलु।"

मालकिन–"क्या लाये हो?"

इस पर उत्तर देता है–"अन्न-धन्न"। मालकिन दरवाजा खोल देती है। अब थोड़ी देर बाद सभी लोग एक कोठे पर बैठ जाते हैं तथा

गाना-बजाना और नृत्य किया जाता है। इसके बाद व्यक्ति विशेष के घर सहभोज का आयोजन किया जाता है।

चियालु

जुकारु के तीसरे दिन को चियालु के नाम से जाना जाता है। इस दिन भी जुकारु की रस्म अदा की जाती है। सबसे मिलन और सम्मान पूर्ववत् होता है। इस दिन फिंडपार और मिंधला के लोग धरती माता का पूजन कर बीजारोपण करते हैं। शेष समय साच के लोगों की भांति आपस में खान-पान और नाच-गाने में व्यतीत करते हैं। साच के लोग मांगल के दिन की तरह फिर कोठे पर बैठ जाते हैं। वहां वे भंगड़ी के बने बकरु को निशाना बनाते हैं। जिसका निशाना लग गया वह प्रजा में अपने को सम्मानित समझता है। उसे सबके लिए खान-पान का प्रबन्ध करना पड़ता है। दूसरे दिन उसे भी भंगड़ी का बकरा लाना पड़ता है। इस प्रकार बारी-बारी से निशाना लगाने का क्रम चलता रहता है।

चवाल्यु (चौथा दिन)--जुकारु का चौथा दिन मेले का रूप धारण कर लेता है। दूर-दूर से रिश्तेदार आते हैं और मेले में शामिल होते हैं। कुठिल के लोग भण्डार के पास एकत्रित होकर इस जुकारु को मनाते हैं। सम्बन्धी शराब भी साथ लाते हैं और घर के मालिक को उपहार स्वरूप देते हैं। यह विशेष कर कुठल गांव का त्यौहार है। इसी प्रकार छयाल्यु चसक और साच में, सताल्यु चसक में, अठाल्यु और गांव में, नवाल्यु हिल्लोर गांव में, दशल्यु पुनः मिंधला और हिल्लोर में, ग्यारहाल्यु किलाड़ और कुमार में, बारहाल्यु पुर्थी में धूमधाम से मनाया जाता है।

स्थान-स्थान पर खान-पान, गाना-बजाना और घुरेही नृत्य होता है। चेले 'हिंगरते' (कांपते) हैं और देवता का संदेश देते हैं। इस प्रकार सारी घाटी आनन्दविभोर हो जुकारु मनाती है। मेहमान घर-घर उपहार ले जाकर मेजवान को प्रसन्न करने में व्यस्त दिखाई देते हैं जबकि मेजबान मेहमान को प्रसन्न करने में कुछ कसर नहीं छोड़ता। चेले, पुजारी, पुरोहित सभी खाने-पीने, मिलने-जुलने और नाच-गाने में मदमस्त दिखाई देते हैं। यह क्रम कई दिनों तक निरन्तर चलता रहता है।

उधर ग्यारहाल्यु को तीन दिन के लिए किलाड़ में स्वांग अयाड़े शुरु होते हैं। इन स्वांगों को देखने के लिए घाटी के लोग दूर-दूर से एकत्र होते

हैं। यह स्वांग खेल मानो एक लोकनाट्य का रूप धारण कर लेता है।

स्वांग नृत्य फुलजात्रा के अंतिम दिन भी किया जाता है। स्वांगी मुखौटे धारण कर नृत्य करते हैं तथा अन्य व्यंग्यात्मक खेलों का अभिनय भी करते हैं। फुल यात्रा में रचाये स्वांगों को हरण की संज्ञा भी देते हैं। एक वर्ष हरण और दूसरे वर्ष स्वांग नृत्य आयोजित किया जाता है।

लिशु (बिशु)

बैशाखी के त्यौहार को पंगवाल-जन 'लिशु' पुकारते हैं। लिशु से दो-तीन दिन पहले लोग अपने-अपने घरों की सफाई करते हैं। मन्दिर में पूजा अर्चना की जाती है। कई मन्दिर इसी दिन पहली बार गर्मियों के आरम्भ में खुलते हैं। इस त्यौहार को सभी पंगवाल शौक से मनाते हैं। मन्दिर में बलि भी दी जाती है।

थाण्डेई

लिशु के 2 मास बाद मनाया जाता है। परन्तु किलाड़ में इसे मनाने की प्रथा नहीं है। मन्दिरों में पूजा-अर्चना की जाती है। तत्पश्चात् लोग नागणी के पानी के स्रोत पर सत्तू और मक्खन ले जाते हैं। घी में सत्तू के गोले बनाकर प्रसादरूप में बांटे जाते हैं। गोलों के साथ सौ-सौ ग्राम घी भी दिया जाता है। लोग इस प्रसाद को श्रद्धा और प्रसन्नता से स्वीकार करते हैं।

मघ

उज्जैणी के एक मास बाद यह त्यौहार पुर्थी और रेई में मनाया जाता है। इस त्यौहार के एक दिन पूर्व लिपाई और पुताई की जाती है। पकवान बनाकर मन्दिर में पूजन किया जाता है। इसके बाद प्रसाद को बांटकर इकट्ठे होकर खाया जाता है।

नवरात्रे

पंगवाल जनजातीय लोग धर्मपरायण हैं अतः नवरात्रे में वे अपने घरों में हवन करते हैं। मन्दिरों में इन दिनों बहुत संख्या में बलियां दी जाती हैं और लोगों का तांता लगा रहता है।

कृष्ण जन्माष्टमी

अन्य त्यौहारों की भान्ति पंगवाल कृष्ण जन्माष्टमी को अन्य लोगों की तरह धूमधाम से मनाते हैं। दिन को व्रत रखते हैं और रात को कृष्ण सम्बन्धी भजन-कीर्तन करते हैं। ❑

चतुर्थ अध्याय

कृषि एवं रहन-सहन

कृषि

पांगी पर्वतीय क्षेत्र हैं, वहां कृषि करने के साधन और साज-सामान एक से हैं अतः यहां की कृषि प्रक्रिया का सांगो-पांग वर्णन निम्न प्रकार से है–

दोनों क्षेत्रों में रबी और खरीफ की फसलें ली जाती हैं। कहीं-कहीं खरीफ की फसल काटने के बाद रबी की फसल पुनः उसी खेत में लगाई जाती है परन्तु कहीं केवल एक ही फसल ली जाती है परन्तु फसलें दोनों लगाई जाती हैं चाहे एक खेत में एक फसल लेने के बाद उसे खाली छोड़ा जाए और दूसरी फसल किसी अन्य खेत में लगाई जाए। जनजातीय लोग नये और पुरातन कृषि ढंग अपना रहे हैं और कहां तक उन्हें नई विधियां अपनाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। साथ ही उनके उपलब्ध सीमित साधनों पर भी विधिवत् विचार किया जा सकता है।

खरीफ की फसलें

सर्दी का मौसम खुलने पर (मध्य चैत मास) खेती की तैयारी आरम्भ कर दी जाती है। खेत तंग और सीढ़ीनुमा होते हैं। उन्हें पत्थर की चिनाई करके तैयार किया होता है। अतः बहुत-से खेतों के डंगे हर वर्ष ढह जाते हैं जिन्हें हर वर्ष चिनना पड़ता है। खेतों में हर वर्ष कई प्रकार की झाड़ियां उग आती हैं जिनको दराट से काट दिया जाता है तथा कुदाल से मिट्टी खोदकर खेत में बिछा दी जाती है।

काटे हुए कांटे और उखाड़ी हुई घास को थोड़ी-थोड़ी दूर ढेर लगाकर रख लिया जाता है। सूखने पर उन्हें जला दिया जाता है। जले हुए कांटों और व्यर्थ की घास-फूस की राख में फसल खूब पनपती है। अब खेत में

गोबर और भेड़-बकरियों की मींगनी की खाद बिछा दी जाती है। लोगों के खेत घर से दूर बिखरे रूप में होते हैं अतः गोबर की खाद बड़े परिश्रम से खेत में पहुंचाई जाती है। इसके लिए काफी श्रम-साधना की जरूरत होती है।

पांगी अधिक ठंडा क्षेत्र है अतः वहां इससे भी अधिक श्रम साधना की आवश्यकता होती है। वहां कभी बैशाख मास में भी बर्फ बिछी रहती है। अतः उन्हें बर्फ पर राख इत्यादि भी डालनी पड़ती है ताकि खेत जल्दी खाली हो जाएं। अन्य कार्य भरमौर की तरह ही करना पड़ता है लेकिन वहां पर अधिकांश फसलें थोड़े समय में तैयार होने वाली लगाई जाती हैं। केवल धरवास और लुज जैसे तलहटी के खेतों में मक्की की फसल सम्भव है जहां बर्फ भी अपेक्षतया जल्दी पिघल जाती है।

फसल लगाना

खेत में बोने से पहले दो या एक हल चलाने के बाद बैशाख मास की बीस तारीख या बैसाख के मध्य के बाद ऊंचे क्षेत्रों में खरीफ की फसल लगानी शुरु कर दी जाती है। सर्वप्रथम आलू की बीजाई की जाती है। भरमौर और पांगी में बीज आलू के लिए अभी तक वैज्ञानिक ढंग से फसल नहीं ली जाती हालांकि इन क्षेत्रों में बढ़िया बीज आलू तैयार हो सकता है। ऊंचे क्षेत्रों में मक्की बैशाख मास के अंतिम सप्ताह में लगा दी जाती है जबकि निचले क्षेत्रों और भरमौर के साथ लगे क्षेत्र में मक्की की फसल जेठ मास के आरम्भ में लगाई जाती है। कभी-कभी वर्षा देर से होने के कारण कुछ दिन फसल लगाने में विलम्ब हो जाता है।

मक्की की फसल में राजमाष भी बो दिये जाते हैं। राजमाष का पौधा बेलदार होता है अतः वह मक्की की टहनी का सहारा लेकर अधिक फसल देता है। मक्की की फसल में ही ककड़ी, गंढोली और कद्दू भी बो दिये जाते हैं। खेत की मेंड़ के साथ-साथ बज़रभंग लगाई जाती है।

बारीक फसलें

सियूल/बज़रभंग इत्यादि अलग से भी लगाई जाती हैं।

मक्की बोने के बाद चणिया (चणौ) भी बोई जाती है कोदो। 'कोद्रा' की फसल भी मक्की की बिजाई के समय ही लगाई जाती है।

माश की फसल जेठ मास के अंतिम सप्ताह में लगाई जाती है।

फसल की गुड़ाई और निराई

आलू का पौधा जब उगकर 2-3 इंच बड़ा हो जाता है तो इसकी प्रथम गुड़ाई की जाती है। घास इत्यादि को 'नदाणी' से निकाल दिया जाता है। इसी प्रकार मक्की का पौधा दो से तीन इंच का होने पर उसकी गुड़ाई की जाती है। आलू की दूसरी गुड़ाई पौधे के फैलाव पर की जाती है। अब पौधे के तने पर खूब मिट्टी चढ़ाई जाती है ताकि उसमें फल उत्पन्न करने की क्षमता बढ़े। खेत में बाड़ आदि लगाया जाता है ताकि 'सेहल' (Porcupine) नामक जंगली जन्तु आलू की फसल को उखाड़ न दें।

मक्की की गुड़ाई पौधे के एक फुट के ऊपर हो जाने पर की जाती है। दूसरी गुड़ाई में इसके तनों पर मिट्टी चढ़ाई जाती है। कई क्षेत्रों में पौधों की गुड़ाई न कर खेत में हल चलाते हैं फिर पौधों को उचित दूरी पर रखकर सीधा कर दिया जाता है।

आमतौर पर स्थानीय मक्की के श्वेत और पीले बीज बोए जाते हैं। कहीं-कहीं आधुनिक उन्नत बीज लगाने की प्रथा भी है परन्तु अधिकांश किसान अपने स्थानीय बीज लगाना पसन्द करते हैं।

दूसरी गुड़ाई के समय रासायनिक खाद डाल दी जाती है। बोते समय रासायनिक खाद नहीं डालते। चणिया और माश की भी समय-समय पर दो गुड़ाइयां की जाती हैं।

फुल्लन और भरेस की फसलों की गुड़ाई और निराई की आवश्यकता नहीं समझी जाती। यदि सियूल अलग बोई हो तो निराई समय पर कर ली जाती है। कोदे (कोद्रे) की भी निराई और गुड़ाई आवश्यक समझी जाती है।

फसल कटाई

भादों मास के अन्त में और असूज मास के आरम्भ में फसल की कटाई आरम्भ हो जाती है। आलू की फसल को भी एकत्रित कर लिया जाता है। जहां मक्की बहुतायत से पैदा होती है इसके भुट्टे निकाल कर छत पर सूखने डाल दिये जाते हैं। पांगी जैसे क्षेत्र में जहां घर की छत मिट्टी बिछाकर तैयार की जाती है, उन पर ही मक्की के भुट्टे सूखने रखे जाते हैं। अन्य फसल/सियूल/चणिया इत्यादि को आंगन या कमरे के फर्श

पर ही झाड़ या कूटकर दाने निकाल लिये जाते हैं। मक्की को भी घर के कोठे या आंगन में कूटकर दाने अलग किये जाते हैं।

भंडारण

भंडारण के लिए लकड़ी के बड़े-बड़े बक्सों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें 'तूण' की संज्ञा दी जाती है, छोटे बक्सों का भी प्रयोग होता है। संलग्न क्षेत्रों में 'ढंडु (जंगली बांस के बने) और 'पेड़ीं (बड़ा ढंडु) का प्रयोग किया जाता है।

रबी की फसलों को लगाने की प्रक्रिया

रबी की फसलों में गेहूं, जौ, सरसों और एलो हैं। जौ की फसल भरमौर और पांगी में समान रूप से लगाई जाती है। यहां अन्य क्षेत्रों की तरह खरीफ की फसल कटने पर तुरन्त जौ की फसल लगाने की प्रथा नहीं है। अपितु रबी की फसल के लिए अलग खेत खाली रखे जाते हैं, जिसमें जौ की फसल लगाई जाती है। 'एलों की खेती पांगी में की जाती है जिसे शराब निकालने के काम में लाया जाता है। यह फसल अधिक ठंडे इलाके में लगाई जाती है।

गेहूं को कहीं-कहीं सावन मास के अन्त में ही बो दिया जाता है। सावन में बोई जाने वाली गंदम अपने स्थानीय बीज से ही उगाई जाती है। आजकल के विकसित बीज भी बोये जाते हैं लेकिन उसे अधिक ऊंचाई के क्षेत्र में नहीं बोते। इसे विलम्ब से बोया जाता है। पांगी क्षेत्र में भी विकसित बीज लगाये जाते हैं परन्तु गेहूं पकता देर से है अतः इसे बरसात के दिनों काटकर कहीं सुरक्षित जगह पर रखा जाता है। इसे भादों मास के अन्त में गाहया जाता है। तलहटी के क्षेत्र में और संलग्न क्षेत्र में कहीं-कहीं थ्रैशर की सुविधा भी मिलने लगी है। गेहूं की आशाजनक उपज होती है परन्तु सीमित खेत होने के कारण यह परिवार के गुजारे अनुसार पर्याप्त नहीं होती।

गंदम के लिए लोग अब रासायनिक खाद का प्रयोग भी करने लगे हैं। पांगी में चाहे गेहूं पकने में अधिक समय लेती है परन्तु उपज आशाजनक होती है, सीमित भूमि व्यवस्था इसमें बाधक है।

खान-पान

पंगवाल जनजाति की खान-पान की अपनी विशेष आदतें हैं। वे संघर्ष-प्रिय लोग हैं। वे सारा दिन मेहनत और मज़दूरी कर अपने लिए भोजन पैदा करते हैं। पांगी क्षेत्र में छः मास बर्फ जमी रहती है। ठंडी हवाएं चलती हैं। खेत भारी बर्फ से ढके रहते हैं। फसल के मौसम पर कहीं-कहीं तो खेत से बर्फ हटानी पड़ती है अतः इस दशा में खरीफ की एक ही फसल सम्भव हो सकती है। धरवास और लुज के निचले क्षेत्रों में बारी से दूसरी फसल लगाई जाती है। सीमित क्षेत्र होने के कारण प्रति परिवार खेत की मलकियत का अनुपात भी इतना आशाजनक नहीं कि हर परिवार अधिक से अधिक खेती कर सके। इस प्रकार वे अपने सीमित साधनों की सहायता से वर्ष भर के लिए पर्याप्त अन्न उपजाने में असमर्थ हैं।

अन्न के अलावा पेट पालने के लिए अतिरिक्त साधनों की भी आवश्यकता समझी जाती है। ऐसी विपरीत परिस्थितियों के होते हुए भी वे स्वादिष्ट भोजन बनाने और खाने के शौकीन हैं। वे शांत प्रवृत्ति के लोग हैं। धार्मिक आस्था उनमें कूट-कूट कर भरी है। शोषण का भूत उन पर सवार नहीं है। वे आपसी भाई-चारे में विश्वास रखते हैं। अतिरिक्त प्राकृतिक साधनों का उपयोग सब समान रूप से करते हैं। प्रजा (गांव का भाईचारा) सबकी आवश्यकता का ध्यान रखती है। आस-पास की वन सम्पदा उपलब्ध होने पर वे उसका समान रूप से उपयोग करते हैं।

स्थानीय फसलें

उनकी स्थानीय फसलों में आलू, गेहूं, चणिया, एलो, फुल्लन, भरेस आदि हैं। कहीं-कहीं कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों धरवास और लुज में मक्की की पैदावार भी होने लगी है। ऊंचे क्षेत्रों में एलो (जौ के प्रकार की फसल) अधिक उपजाई जाती है जो प्रायः शराब बनाने के काम आती है। जौ को पीसकर आटा बनाया जाता है। इसके दाने भूनकर और फिर पीसकर जो आटा बनाया जाता है उसे सत्तू की संज्ञा दी जाती है। सत्तू में गुड़

मिलाकर पानी में घोलकर चलते-फिरते भी खाया जा सकता है। इसके साथ घी मिलाकर पेड़ बनाकर भी खाये जाते हैं। इन्हें टोट कहा जाता है। टोट को विशेष बनावट दी जाती है। सत्तू का प्रयोग छाछ के साथ भी किया जाता है। सत्तू एक सुगम और सस्ता आहार है। सत्तू के टोट बनाकर देवताओं का पूजन करने का भी प्रचलन है। एलों का स्थानीय विधि से शराब निकालकर पीने का आनन्द भी पंगवाल जन लेते हैं। चणिया (एक बारीक अन्न) का भात एक स्वादिष्ट भोजन है जो पचने में कुछ ही समय लेता है तथा पेट के कई रोगों का निवारण करता है। पूजन के लिए बनाये भरेस के बकरे अत्यन्त स्वादिष्ट होते हैं।

विशेष अवसरों पर पकवान के रूप में हलवा और लुच्ची (तली पूरियां) विशेष भोजन होता है। हर देवी-देवता के लिए इसका प्रसाद चढ़ाया जाता है।

घी और सत्तू तो हर धार्मिक अनुष्ठान में लगते हैं। जब कोई मेहमान घर से विदाई ले तो घी और सत्तू भेंट स्वरूप देने का प्राचीन रिवाज है। विशेष धार्मिक उत्सवों पर घर में घी के दीपक जलाना एक धार्मिक प्रथा है। सहभोज के समय भी यही आशा की जाती है कि भोजन में अधिक से अधिक घी की मात्रा रहे।

प्राकृतिक उपज

मौसम के खुलने पर प्रकृति वन में दिल खोलकर अपना प्राकृतिक भण्डार बिखेरती है जिसका लाभ उठाने में स्थानीय लोग कसर नहीं छोड़ते। गुच्छी, छत्री और अन्य दुर्लभ वन्य शाकों का प्रयोग वे खान-पान में करते हैं। इतने अमूल्य पदार्थ उनके लिए प्रकृति की देन है। इसके अतिरिक्त 'फर्न' जैसी जंगली उपज भी उनकी रसोईघर की कई ज़रूरतों को पूरा करने में सहायक होती है। ये पदार्थ सुगम स्थानों पर पैसा देकर भी उपलब्ध नहीं होते।

चायपान की भी उन्हें आदत-सी है। कहीं-कहीं 'चोगा' नामक वृक्ष भी चाय पत्त के बदले प्रयुक्त होता रहा है। इसी प्रकार कई प्रकार की वनस्पतियां दक्षिण भारत से आने वाले गर्म मसालों का काम देते रहे हैं। खेत के आस-पास उगने वाली बिच्छूबूटी अत्यन्त स्वादिष्ट शाक है, जिसे आवश्यकता पड़ने पर घर की रसोई में शौक से बनाया जाता है। इसके

खाने से पेट के कई रोग दूर होते हैं। सरसों का साग तो अपने खेतों में उगाया जाता है। कई स्थानीय सब्जियां घर के आस-पास उगाई जाती हैं। गोभी, कड़म, बैंगन और लाल मिर्च उगाई जाती हैं और स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। अखरोट घाटी में काफी मात्रा में होता है अतः स्थानीय विधि से तेल निकालकर इसका भोजन में प्रयोग किया जाता है।

विशेष उत्सवों और त्यौहारों के समय 'उणास' और 'मण्डे' बनाकर सहभोज में खिलाने की प्रथा भी आम है। उणास गूंथे हुए आटे के अंग्रेज़ी के S आकार का तल कर बनाया गया पकवान है। मण्डों के लिए पहले कुनाई (लकड़ी की बनी बड़े आकार की परात) में आटे का पतला घोल बनाया जाता है फिर उसे स्थानीय लकड़ी के चम्मच विशेष-अरबानी से खूब हिलाया जाता है और तवे विशेष पर, जिसे 'पठ्‌ठ' कहा जाता है, तेल डालकर तल लिया जाता है। अब मण्डे की तीन-चार तह लगाई जाती है। जिसे स्थानीय भाषा में 'कुन्नी' कहा जाता है। मण्डे बनाने के लिए पत्थर के विशेष प्रकार के तवे का भी प्रयोग किया जाता है, जिसे किलाड़ में मनौती और साच में 'मंथ' नाम दिया जाता है।

सर्दियों के लिए छाछ के भण्डारन की व्यवस्था भी की जाती है जिसे 'डाहोछा' कहा जाता है। पंगवाल लोग मांस खाने के भी शौकीन हैं। वे इसको कई प्रकार से बनाते हैं। भुने हुए अन्न में अखरोट की गिरी डालकर खाई जाती है। ठांगी (Hazelnut), न्योजा आदि मेवे सर्दियों में खाए जाते हैं।

खाने-पीने के समय

नुहारी (Breakfast)

कलाऊ (Lunch)

रिहानी (दोपहर का अल्पाहार)

ब्यादी (Dinner)

यह तालिका किलाड़ क्षेत्र में प्रचलित है जबकि साच क्षेत्र में इसे भिन्न नामों से जाना जाता है—

दुफारी, हिरयाणी और ब्याई। यहां हिरयाणी रिहानी का पर्यायवाची न होकर कलाऊ का स्थान लेती है। रिहानी के लिए विशेष शब्द उपलब्ध

नहीं हुआ है जबकि ब्यादी और ब्याई शब्द आपस में पर्यायवाची हैं।

आधुनिक सन्दर्भ में खान-पान

आज जब यातायात के सुधार के कारण दुर्गमस्थल काफी सुगम हो गए हैं, दूरस्थ स्थल निकट हो गये हैं तथा लोगों के आपसी सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण हो गए हैं इस दशा में अब पांगी के खान-पान में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। अब अन्न की वह कमी नहीं रही है। अन्न की ड्रापिंग हवाई जहाज द्वारा होती है और अब तो हैलीकॉप्टर की उड़ान घाटी में मास में दो-तीन बार होने लगी है।

सरकार सर्दियों के लिए अन्न का पर्याप्त भण्डारण कर लेती है। इस दशा में लोगों के खान-पान में दाल-भात, चपाती-भाजी आदि का प्रयोग होने लगा है। अब अखरोट और गलेल तेल निकालने की समस्या नहीं रही, न ही इधर-उधर भटक कर पेट पूर्ति की बात रही। अब खान-पान में विशिष्टता की बात दृष्टिगत नहीं होती। केवल शौक के तौर पर लोग अपने स्थानीय पकवान खाने में रुचि लेते हैं या रीति-रिवाज के अनुसार वही बकरु, रोट, लुच्ची और सत्तू बनाते हैं।

रहन-सहन

पांगी अन्यन्त कठिन क्षेत्र है जहां बाहर से हर प्रकार की सामग्री पहुंचना कठिन होता है अतः रहन-सहन की आवश्यक वस्तुएं स्थानीय वातावरण के अनुसार इकट्ठी की जाती हैं।

भवन निर्माण

पंगवाल लोग ठण्डा प्रदेश होने के कारण अपने घर अधिक ऊंचे नहीं बनाते और पशुओं को भी एक ही गृह में निचली मंज़िल में रखते हैं। जनसंख्या कम है अतः गांव दूर-दूर बसे हैं परन्तु जहां भी गांव हैं, घर एक दूसरे के साथ-साथ बनाये जाते हैं ताकि सर्दियों में आपस में सम्पर्क बना रहे। कहीं-कहीं तो शहरों की तरह दीवारें भी सांझी होती हैं।

घर प्रायः दो मंज़िले बनाये जाते हैं। चिनाई के लिए साधारण पत्थर लगाया जाता है जो आस-पास की चट्टानों को तोड़कर प्राप्त कर लिया जाता है। चिनाई के समय पत्थर को सहारा देने के लिए पर्याप्त लकड़ी का प्रयोग किया जाता है ताकि मकान गिर न जाये और काफी सालों तक टिकाऊ बना रहे। दीवारें उसारते समय मिट्टी और गारे का कम ही प्रयोग किया जाता है। सीमेंट पहुंचाना अत्यन्त महंगा पड़ता है अतः निर्माण के समय सरकारी भवनों को छोड़ अन्य भवनों में इसका प्रयोग नहीं होता।

स्लेट या इस्पात की चद्दरें भी घाटी में पहुंचाना कठिन कार्य है अतः छत पर मिट्टी बिछाई जाती है। इस प्रकार छत सपाट बन जाती है। उसे पीटकर खूब समतल और मज़बूत बना दिया जाता है ताकि पानी अन्दर न जा सके। सरकारी भवनों की छतों पर प्रायः इस्पात की चद्दरें बिछाई जाती हैं। स्लेट की खानें वहां पर नहीं हैं अतः स्लेट का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है। लकड़ी का अभाव नहीं है अतः कमरे बनाने के लिए और छत को मजबूत रखने के लिए दयार के लम्बे शहतीरों का प्रयोग किया जाता है। दीवार पर भी लकड़ी के लम्बे शहतीर टिकाये जाते हैं, बीच में एक और शहतीर लम्बाई में रखा जाता है ताकि दोनों ओर

चौड़ाई में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर छोटे बीम रखे जा सकें। उन पर मज़बूत तख्ते बिछाये जाते हैं। इस प्रकार के लम्बे शहतीर को पंगवालजन 'न्यास' कहते हैं और छोटे बीम को **'पांठ'** की संज्ञा दी जाती है।

अधिक हिमपात और अत्यन्त सर्दी के कारण लोग सर्दियों में निचली मंज़िल (Ground floor) में रहते हैं। यह मकान का एक ही बड़ा-सा कमरा होता है। इस कमरे को इस प्रकार तैयार किया जाता है कि एक ओर घर के सभी सदस्य रह सकें और दूसरी ओर पशु रह सकें। जिस सामने के भाग में पशु रखे जाते हैं उसे 'गवाइल' या 'आघल' कहा जाता है।

आघल के लिए ऊंचाई में लकड़ी के बीम का प्रयोग किया जाता है ताकि पशुओं के लिए एक कटघरा-सा बन सके। निचली छत के लिए प्रवेश द्वार को 'शिंखल' कहा जाता है जो मनुष्य और पशु के लिए अन्दर-बाहर जाने का मार्ग होता है।

घर के सदस्यों के लिये स्थान गवायल से थोड़ा ऊंचा रखा जाता है जहां पर चूल्हा भी बनाया जाता है। धुएं के निकास के लिए दीवार में छोटा-सा छेद रख लिया जाता है। कहीं-कहीं भेड़-बकरियों के लिए तख्ते के सहारे से अपेक्षतया ऊंचा स्थान बना लिया जाता है जिसे 'टन' कहा जाता हैं।

इस प्रकार के निचले बड़े कमरे को 'कोठ' कहा जाता है। कोठ के ऊपर एक और कमरा होता है जो निचले कमरे से छोटा होता है अतः निचली दीवारों पर समान रूप से नहीं बनाया जाता। यह निचले कमरे के समरूप नहीं होता है। इसी छत पर घास रखने के लिए भी एक स्टोर-सा बनाया जाता है जिसे 'माहल' या 'बुखारी' के नाम से जाना जाता है।

क्योंकि गांव में घर लगभग एक दूसरे से लगे होते हैं अतः आंगन की व्यवस्था नहीं होती। आंगन का काम छत देती है। ऊपर की छत (Roof) को साच के स्थानीय लोग 'लढ़' भी कहते हैं। चम्बा के अन्य भागों में इस प्रकार की छत को कोठा या सरण से जाना जाता है। विवाह शादी या त्योहार के समय लोग लढ़ पर ही एकत्रित होते हैं। यह बैठक (Meeting Place) का काम देती है। घर के आस-पास सब्जी उगाने के

लिए 'बाड़ी' भी हुआ करती है जहां शाक-भाजी उगाई जाती है।

आधुनिक विकास की किरण पहुंचने पर कहीं दूसरी मंज़िल में खिड़कियां इत्यादि का प्रबन्ध कर आधुनिक बना दिया गया है। पूर्णरूप से आधुनिक ढंग के मकान कम ही देखने को मिलते हैं इसका कारण पांगी की अपनी भौगोलिक परिस्थिति है।

अन्य सुविधाएं

प्रकाश की सुविधा के लिए सरकार ने सौर ऊर्जा और डीज़ल इंजन की सहायता ली है। सौर पैनल के लिए बैटरी की समय-समय पर व्यवस्था करनी पड़ती है अतः कहीं-कहीं अब इस प्रकार की प्रकाश व्यवस्था बन्द पड़ी है।

पीने के पानी की व्यवस्था हर गांव में है। कहीं-कहीं प्राकृतिक स्रोतों से स्वास्थ्यवर्धक जल उपलब्ध होता है।

भवन निर्माण सम्बन्धी कुछ शिष्टाचार

घर की नींव रखना

घर की नींव मुहूर्त निकलवा कर ही रखी जाती है। नींव का पत्थर रखते समय एक लाल कपड़े में सरसों के बीज, कोई सिक्का, फूल, लुच्ची और दूध का बर्तन एक कोने पर रखे जाते हैं, तत्पश्चात् उस पर नींव का पत्थर रखा जाता है इसे 'मुनियाद रखना' कहा जाता है। इस अवसर पर लोगों को प्रसाद बांटा जाता है।

न्यास रखना

जब दूसरी मंज़िल के लिए न्यास लम्बाई में रखा जाता है तो भी पूजा करवाई जाती है। यदि सम्भव हो तो भेड़ की बलि दी जाती है। प्रसाद भी बांटा जाता है।

प्रतिष्ठ

घर के पूर्ण होने पर भेड़ या बकरे की बलि दी जाती है। बलि दिये बकरे या भेड़ के रुधिर को चूल्हे पर छिड़का जाता है। सामर्थ्यानुसार प्रजा को भोज दिया जाता है।

वेशभूषा

पंगवाल-जनजाति की अपनी पारंपरिक वेश-भूषा है इसका ब्योरा नीचे दिया जाता है।

पुरुष वेशभूषा

टोप

पंगवाल पुरुष सिर पर सूती कपड़े की श्वेत टोपी पहनता है जिसे वह प्रायः टोप की संज्ञा देता है। टोप भी विशेष किस्म का बना होता है जिससे कान तथा गर्दन ढकी रहती है। निचले भाग को अंशतः बदलकर सिया होता है जिस पर लाल या नीले धागे का बॉर्डर लगाया होता है। यह विशिष्ट प्रकार का वस्त्र अपनी पहचान के लिए पहना जाता है।

कमि (कमीज़)

कमीज़ साधारण कपड़े या ऊनी पट्टी की बनी होती है। इसे कमि कहते हैं।

लिक्खड व गाची

लिक्खड ऊनी पट्टी का बना घुटने तक लम्बा कोट होता है। कमर में ऊनी काला डोरा पहना जाता है जिसे 'गाची' के नाम से जाना जाता है। गाची के स्थान पर ऊनी पटका भी पहना जा सकता है।

चालण

टांगों का वस्त्र किलाड़ में 'चालण' और साच में 'सुत्थन' कहलाता है। यह ऊनी वस्त्र है और रेबदार ढंग से सिया जाता है।

स्त्री वेशभूषा

औरतें आकर्षक ढंग से सिर पर जोज़ी पहनती हैं जिस पर कढ़ाई का काम हुआ होता है। इसका ऊपरी भाग सिर को ढांपता है और पिछला भाग सिर की वेणी के साथ-साथ पीठ पर लटका रहता है। शरीर ढांपने के लिए डिज़ाइनदार रंगीन पट्टू (चादर) कलात्मक ढंग से पहना जाता है।

जिसे बरास पिन के साथ सुन्दर तरीके से बांधा जाता है उसे 'नलोट' कहते हैं। टांगों में 'चालण' पहना जाता है जिसे 'सुत्थण' भी कहा जाता है।

पूंले

पुरुष और स्त्रियां जौ या गंदम के घास की सुन्दर पूलें बनाकर पांव में पहनते हैं जो कलात्मक ढंग से बनी होती हैं।

केश विन्यास

औरतें अपने बालों को मांग के मध्य से ढालती हैं। दोनों ओर कंघी से समान पट्टियां बनाई जाती हैं। बालों को सुन्दर काले परांदे के साथ पीछे से एक लम्बी वेणी में गूंथा जाता है, माथे पर लाल बिंदियां सुन्दर लगती है। लिप्स्टिक के स्थान पर अखरोट का दंदासा होंठों को आकर्षक बनाता है और दांतों की शोभा बढ़ाता है।

आभूषण

यद्यपि भगवान ने पंगवाल महिलाओं को रूप और रंग देने में कोई कसर नहीं छोड़ी है फिर भी वह हिमांगना स्वयं को बनावटी आभूषणों से सजाने में कोई कमी नहीं छोड़ती, यथा-सम्भव सोने और चांदी के ज़ेवरात पहनकर अपने आपको पूर्ण रूप से सजाने का प्रयत्न करती है।

कान में कांटे और कडु पहनने से मानो उसके कान झुक जाते हैं। कान में कर्ण फूल, टिक्कियां और संगली भी पहनी जाती है। नाक में सोने की 'मुर्की' भी कोई कम नहीं सजती। नाक का ही एक अन्य आभूषण 'लौंग' भी है जो सोने से निर्मित होता है और नाक की कांति को बढ़ाता है। गले में मोती दाना, डोडमाला, गलपट्टा, जौमाला, ताबीत आदि शरीर की सुन्दरता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। पांव में पाजेब पहनने का भी कम रिवाज नहीं। सिर के दोनों ओर की संगलियां कानों तक पहुंचती दृष्टिगत होती हैं। हाथ की उंगलियों में सोने और चांदी की अंगूठियां सुन्दर लगती हैं। कलाई पर चांदी और कांच की चूड़ियों की छनछनाहट की ध्वनि कानों में बार-बार पहुंचती है। समृद्ध महिलाएं गले में सोने का हार भी पहनती हैं। बहुधा मालाओं के साथ गले में 'जंत्र' भी पहने देखे जाते हैं। शायद ये उनकी सम्पूर्ण आकर्षक वेशभूषा और सौंदर्य की रक्षा करते हैं।

❑

पंचम अध्याय

लोक देवता

देव मन्दिर

पंगवाल लोगों की देवी-देवता पर अगाध श्रद्धा है। मानो उनका सम्पूर्ण जीवन ही देवी-देवता की अपार कृपा पर निर्भर करता है। सच भी है, इतने कठिन क्षेत्र में देवता की कृपा ही है जो उन्हें जीवित रखती है। कोई बीमार पड़ जाये तो तुरन्त उपचार क्या है जो उसकी सहायता करें, आखिर देवी-देवता की अज्ञात शक्ति ही है जो उसकी रक्षा कर सकती है।

यही कारण है कि वह अपने आराध्य देव को मनाये बिना कोई कार्य आरम्भ नहीं करता। यह कोई भी देवता हो सकता है--शिव हो चाहे पार्वती, नाग हो चाहे नागिन, काली हो चाहे शक्ति, कोई भी अज्ञात दैवी शक्ति उसकी मनोकामना को पूर्ण कर सकती है। उसकी मनौती मन्दिर में जाकर श्रद्धावत् चढ़ाना उसका परम कर्तव्य बनता है।

देवी-देवता असंख्य हैं, वे अपने-अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ हैं। कोई वर्षा लाता है, कोई फसल को कीट से बचाता है, कोई वन पशुओं से रक्षा करता है, कोई पशुओं को कई व्याधियों से बचाता है इस प्रकार कोई शिव है तो कोई नाग, कोई चामुण्डा है तो कोई काली, कोई वनाधिष्ठात्री है तो कोई गृह-वासिनी इत्यादि। इन देवी-देवताओं का वर्णन उनकी मान्यता उनके स्थान विशेष, मन्दिर और मूर्तियों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

सुराल की सिंघासनी माता

पांगी के सुराल क्षेत्र में सिंघासनी माता का छोटा-सा पहाड़ी शैली का मन्दिर है। यहां भादों मास में लोग जात्रा का आयोजन करते हैं।

स्थानीय लोग यहां नई फसल को खाने से पूर्व चढ़ाते हैं। बलि की प्रथा भी प्रचलित है।

जरहियूं नाग व दैंत नाग

यहां तीन-चार छोटे-छोटे नाग मन्दिर हैं जिनमें जरहियूं नाग और दैंत नाग के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। इन पर काष्ठ कला कार्य भी हुआ है। साधारण-सी पत्थर की मूर्तियां रखी हैं। बाहर त्रिशूल और लकड़ी के खड्ग पड़े हैं। लोहे के सांकल प्रतीक रूप में टंगे हैं। स्थानीय लोगों में इनकी मान्यता है। दैंत नाग किलाड़ के मुख्य दैंत नाग का ही प्रतीक है। स्थानीद लोगों ने अपनी सुविधा के लिए वहां से चिह्न प्राप्त कर मन्दिर की स्थापना की है। सिंघासनी माता शक्ति का दूसरा रूप है। नाग देवता को दूध-घी चढ़ाने के अतिरिक्त भेड़-बकरियों की बलि देने की प्रथा भी है।

धरवास क्षेत्र के देवता

धरवास क्षेत्र में दांति, कासर, बासर और अनेक देवों के मन्दिर हैं। कहा जाता है कि लुज नामक गांव में बासर की बहन एक नागिन ने राणा के घर में जन्म लिया इसलिए गांव का नाम लुज पड़ा। उसका सुराल के नाग देवता से विवाह हुआ अतः गांव का नाम सुराल (ससुराल) सम्भव हुआ। वह चलाल गांव के ऊपर झील में निवास करती है। जब सुराल के लोग वहां जाते हैं तो पानी शान्त होता है परन्तु जब लुज के लोग (उसके मायके के) वहां जाते हैं तो पानी में हलचल दिखाई देती है।

लुज का शीतला माता का मन्दिर

लुज गांव में ही शीतला माता का मन्दिर भी है। यह पांगी क्षेत्र के बड़े मन्दिरों में से एक है। मन्दिर स्थानीय पहाड़ी शैली में बना है। छोटी-सी पीतल की शीतला माता की मूर्ति भी है। मन्दिर के अग्रभाग में लकड़ी पर खुदाई हुई है। छत पर त्रिशूल का चिह्न अंकित हुआ है। मन्दिर के सामने एक छोटा-सा मैदान है जहां जात्रा और जागरण का आयोजन होता है। समस्त पांगी के लोग यहां आकर अपनी श्रद्धा से प्रसाद चढ़ाते हैं और पैसे भेंट स्वरूप देते हैं।

वहां के प्रधान श्री सूरदास ने भेंटवार्ता में बताया कि मन्दिर का प्रबन्ध प्रजा के हाथ में है। मन्दिर के पुजारी और चेले की नियुक्ति प्रजा करती है। चेला देवता का संदेशवाहक होता है। पुजारी प्रायः राजपूज या

ब्राह्मण जाति से नियुक्त किया जाता है। हरिजनों को मन्दिर में प्रवेश की मनाही नहीं है। प्रसाद पर पुजारी का अधिकार होता है। पैसे का भी उसे अशंदान दिया जाता है शेष राशि प्रजा के पास रहती है जिसे वह मन्दिर के सुधार पर हर वर्ष व्यय करती है। पांगी में बर्फ बहुत अधिक पड़ती है अतः मन्दिर हर पांच वर्ष के बाद नये बनाये जाते हैं। कभी अत्यधिक बर्फबारी से मन्दिर गिर सकते हैं अतः उनका पुनर्निर्माण करना पड़ता है। यह सारा कार्य बचाई हुई रकम द्वारा किया जाता है। देवी के भण्डार के लिए भण्डारी की भी आवश्यकता होती है। सारे पांगी क्षेत्र में मन्दिर का प्रबन्ध इसी तरह चलता है। इस प्रकार सरकारी हस्तक्षेप नगण्य है। सर्दियों में मन्दिर के कपाट बन्द कर दिये जाते हैं। मौसम के खुलने पर चैत के अन्त और बैशाख मास के आरम्भ में मन्दिर के कपाट खोल दिये जाते हैं। शीतला माता कई प्रकार की व्याधियों को दूर करती है ऐसा विश्वास किया जाता है।

किलाड़ का दैंत नाग

किलाड़ गांव में दैंत नाग सर्व प्रसिद्ध है। इस नाग को हुणसाण नाग, हुणासु नाग और दंती नाग से भी जाना जाता है। दैंत शब्द दैत्य शब्द का ही अपभ्रंश रूप है। यह नाग पहले लाहौल में रहता था। इसका मन्दिर (स्थानीय भाषा में देहरा) जंगल के मध्य दयार के वृक्षों से चारों ओर से घिरा है जो इसकी सुन्दरता को चार चांद लगाते हैं। भवन का मुख द्वार काष्ठकला की खुदाई से सुसज्जित है। आकृतियां विशेष आकर्षक नहीं खुदी हैं। मन्दिर के आस-पास लोहे की त्रिशूलों के ढेर लगे हैं। पर्वतीय संस्कृति में लकड़ी की लम्बी पट्टियों पर सांप के आकार उकेरने की प्रथा है। इस प्रकार की लकड़ी की शलाकाएं सैंकड़ों की संख्या में मन्दिर के आस-पास रखी हैं। मन्दिर के अन्दर नाग की मूर्ति उल्टी रखी है अर्थात् नाग की मूर्ति का मुख प्रवेश द्वार की विपरीत दिशा में है।

सारे पंगवाल इस नाग का श्रद्धापूर्वक यहां आकर पूजन करते हैं। कहा जाता है कि कुछ वर्ष पूर्व तक इसे भैंसे की बलि दी जाती थी परन्तु अब भेड़ या बकरी की बलि दी जाती है। फुल-जात्रा के अंतिम दिन यहां मेला लगता है तथा बलि दी जाती है। जब कभी सूखा पड़ता है तो

पंगवाल अपने वाद्ययंत्रियों के साथ यहां वर्षा लेने के लिए कई-कई दिन तक 'अरदास' लगाये बैठते हैं।

जगसर व सिंघासनी तथा कोटासनी मां

किलाड़ में अन्य देवी- देवताओं में जगसर नाग (जोगेश्वरनाग) कोटासनी माता और सिंघासनी मां की मान्यता भी कोई कम नहीं। इनको भी समय-समय पर बलि दी जाती है।

क्वास नाग

किलाड़ के ही एक गांव क्वास में स्थानीय शैली में निर्मित मन्दिर है जिसमें देवता प्रस्थापित है। यह नाग देवता पशुओं की बीमारी पर नियन्त्रण रखता है। लोग इस नाग का पूजन करते हैं ताकि उनका पशुधन स्वस्थ रहे। नाग को बलि देने की प्रथा है। बैशाख मास में इस नाग के निमित्त मेला लगता हैं।

सिंगवान देवता

किलाड़ के दूसरी ओर चन्द्रभागा को लांघकर पूंटो नामक गांव आता है। वहां सिंगवान नामक देवता वर्तमान है जिसकी मान्यता सब जगह है। लोक-विश्वास है कि यह देवता पशुओं की हिंस्र वन पशुओं से रक्षा करता है। यहां पर भी मेले और जागरण का आयोजन होता है। चैत मास में यहां पर एक मेला होता है जिसमें आस-पास के गांव से लोग एकत्रित होते हैं।

नवकुण्ड देवता

हुण्डान के कट्वास गांव में नवकुण्ड देवता का मन्दिर है। हर वर्ष भादों मास में यहां मेला लगता है।

मलासनी माता

गांव करयूनी में, किलाड़ से तीन मील की दूरी पर है। यहां हर वर्ष चैत मास में मेला लगता है। इस देवी की भी स्थानीय लोगों में बहुत मान्यता है।

मिंधला वासिनी चामुण्डा

मिंधला गांव किलाड़ से आठ मील के फासले पर चन्द्रभागा नदी के साथ-साथ पूर्व की ओर है। कहा जाता है कि पुराने समय यहां एक बुढ़िया का मकान था। उसके चार पुत्र थे। भगवान् की कृपा से सभी

विवाहित थे। एक दिन वे सभी खेत में हल जोत रहे थे। सभी बहुएं उनके साथ कार्यरत थीं। बुढ़िया घर पर थी। इतने में क्या देखती है कि उस घर के चूल्हे में एक पत्थर ने उभार ले लिया।

इस प्रकार की घटना पहले से ही हो रही थी परन्तु बुढ़िया की बात पर कोई विश्वास नहीं करता था। सभी अपने कार्य में संलग्न रहते थे। उस दिन जब पत्थर ऊपर उठ आया और उसे आवाज सुनाई दी—"बुढ़िया डरो मत, मैं चामुण्डा हूं, अपने पुत्रों से यहां मन्दिर बनवाओ..." वह एकदम खेत में अपने पुत्रों से घटना सुनाने गई तो उन्होंने बात हंसी में उड़ा दी। उसने वापस आकर वृत्तान्त गांव वालों से कहा जो आनन्द से पलंग पर लेटे थे और कुछ औरतें सूत कात रही थीं, तो उन्होंने भी बात अनसुनी कर दी। इस पर भगवती कुपित हुई। बुढ़िया के सब पुत्र पत्थर बन गए। अब लोग दौड़े-दौड़े मन्दिर निर्माण में लग गए।

अब जबकि बुढ़िया के सभी पुत्र शिलाओं में परिवर्तित हो गए थे। उसकी पुत्र-बधुएं भी पत्थर बन चुकी थीं, बुढ़िया ने भी देवी से प्रार्थना की कि उसे भी शिला का रूप दे दिया जाये। भगवाती ने उसकी इच्छा पूर्ण करने से पूर्व उससे वर मांगने को कहा—बुढ़िया ने भगवती के चरणों में रहने की प्रार्थना की। भगवती ने प्रसन्न होकर वर दिया कि मेरे पूजन से पहले लोग तेरा पूजन करेंगे। अब जब यात्रा में पूजन होता है तो सर्वप्रथम उस बुढ़िया की शिला की पूजा की जाती है।

मिंधला भगवती ने लोगों को शाप दिया—"इस गांव में आगे के लिए एक बैल से हल चलेगा। दूसरे—कोई पुरुष या नारी इस गांव में चरखे से सूत नहीं कातेगा।" आज सभी लोग इस शाप को भुगतते हैं और इन बातों का पालन करते हैं।

देवी के चमत्कार के किस्से भी लोगों की ज़बान पर हैं। एक दैत्य राक्षस का एक अजगर के रूप में आना और उसे देवी द्वारा धराशायी किया जाना—जिसके टुकड़े शिला रूप में मिंधला के ऊपर पर्वत पर साच गांव से दिखाई देते हैं। पानी का चश्मा त्रिशूल मारकर निकालना तथा अन्य राक्षसों से युद्ध की कहानियां लोगों में प्रचलित हैं। यहां देवी के दर्शनार्थ दूर-दूर से लोग आते हैं। जब भादों और कार्तिक मास में अलग-अलग मेले होते हैं तो पाडर और जम्मू-कश्मीर तक के लोग अधिक

संख्या में आकर देवी के चरणों में नत होते हैं और बकरे की बलि चढ़ाते हैं। मेला रात-दिन चलता है। मन्दिर स्थानीय शैली में है। मन्दिर के अगले भाग पर काष्ठकला कृतियां उकेरी हुई हैं। छत के सिरे पर त्रिशूल है। गर्भगृह में पीतल की छोटी-सी मूर्ति रखी है। चढ़तर का कुछ अंश, चांदी के छत्र जो लोगों द्वारा चढ़ाये जाते हैं लक्ष्मीनारायण मन्दिर चम्बा में जमा कराये जाते हैं, शेष प्रबन्ध स्थानीय प्रजा का है।

विलीनवासिनी करियास

करियास गांव किलाड़ से पश्चिम की ओर तीन मील के फासले पर बसा है। यहां विलीन-वासिनी भगवती पांगी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसे टटन भगवती भी कहते हैं। मिंधला भगवती की तरह इस देवी की भी बहुत अधिक मान्यता है। इसके विषय में दन्त कथाएं प्रचलित हैं। कहते हैं कि इस भगवती ने नेशर नामक व्यक्ति के घर जन्म लिया। जब वह छोटी थी तो अंछी (एक प्रकार की स्ट्राबेरी) चुनकर खाना पसंद करती थी। तथा चन्द्रभागा नदी के आस-पास मिले चकोर पक्षी के अण्डों से खेलती थी। उसकी अंछी खाने की इच्छा पूर्ण नहीं हुई अतः वह एक गुफा में विलीन हो गई। उसके पिता को उसकी अत्यन्त चिंता हुई। उस कन्या ने अपने पिता को भोजन का प्रबन्ध करने के लिए कहा।

उसका पिता प्रतिदिन भोजन लाता। कन्या भोजन लेने के लिए अपना हाथ बढ़ाती लेकिन भोजन प्राप्त करने के बाद वह विलीन हो जाती। समय की विडम्बना, उसका पिता बूढ़ा हो गया। अब उसने किसी अन्य को भोजन ले जाने के लिए नियुक्त किया। एक दिन जिज्ञासा और भावुकता में उसने कन्या का हाथ पकड़ लिया अतः वह व्यक्ति भस्म हो गया। अब माता ने अपनी शक्ति से एक पुरुष को इस कार्य के लिए नियुक्त किया। यह पुरुष चट्टान के फटने से उत्पन्न हुआ कहा जाता है। बाद में स्थानीय लोगों में माता के पूजन की प्रथा कायम हुई। एक व्यक्ति उसकी पूजा के लिए श्वेत वस्त्र धारण कर जाता है। विलीन-वासिनी माता की मान्यता हर स्थान पर है। चैत मास के अन्त में यहां मेला लगता है। उनौनी का तीन दिन के लिए मेला यहां आयोजित होता है। अन्य स्थानों की तरह यहां भी भेड़ और बकरे की बलि दी जाती है। हर रविवार को लोगों का तांता लगा रहता है।

कोटासनी और सिंहासनी तथा शिवालय

किलाड़ में कोटासनी और सिंहासनी देवियां हैं। इसके अतिरिक्त शिवालय भी है। दैंत नाग और योगेश्वर नाग (जगसर नाग) का वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

साच गांव के देवालय

साच गांव में जोगेश्वर नाग, प्रौढ़नाग, महल पिन्याट और धारें नाग के मन्दिर हैं। एक शिवालय भी है। जोगेश्वर नाग (जगसर) प्रौढ़ नाग और शिव के मन्दिरों पर काष्ठ कार्य काष्ठ कला का उत्तम उदाहरण है। यहां पर हर वर्ष जुकारु के दिनों में मेला लगता है। इस प्रकार पुर्थी, हिलोर, कुमार शूड़ इत्यादि हर गांव में जरहियुं नाग और भगवती के मन्दिर हैं जिनका हर समय पूजन होता है। पंगवाल लोग शिव के भी कम उपासक नहीं। हुण्डान के पहाड़ों पर पांगी का कैलास पर्वत है जिसे वे कडहयूं के नाम से जानते हैं। यहां अन्य कैलास पर्वतों की तरह समय-समय पर मेला लगता है। इस के प्रति पंगवाल जनों की भावनाएं उतनी ही सम्वेदनशील हैं जितनी कि गद्दी जनों की चम्बा कैलास के प्रति।

करियास के खण्डव और गोधन नागों की मान्यता भी कम नहीं है।

पंगवाल जनजातियों में ऋृतु परिवर्तन पर ऋृतु पूजन की प्रथा भी प्रचलित है।

शीतराज के आगमन और विसर्जन पर ऋृतुराज का निश्चित तिथियों को पूजन होता है। ऋृतुराज नई ऋृतु का संदेश लेकर आता है। संदेश के प्रतीक प्रातः पूजन सामग्री के साथ लगे देखे जा सकते हैं। लोगों का विश्वास है कि यदि पूजा सामग्री के साथ प्रातः भेड़ और बकरी के बाल इत्यादि लगे हों तो ऋृतुराज भेड़-बकरी जैसे पशुओं के लिए अत्युत्तम साल लाता है। इसी प्रकार अन्य प्रकार के चिह्न से अन्य प्रकार का अनुमान लगाया जा सकता है। गांववासियों के निर्दिष्ट स्थान होते हैं जहां पर अनुमानित तिथि को ऋृतुराज आते हैं और जाते समय भी वहीं पहुंचना होता है।

धरती पूजन

पंगवाल जन का पुन्हेई के समय धच्वी पूजन धरती पूजन ही है। पानी पूजन भी कई ढंग से किया जाता है। उजैणी त्यौहार के समय पानी

के चश्मे का, नागन के माध्यम से पूजन करना जल पूजन ही है। सूर्य पूजन सूर्य को अर्घ्य देने से किया जाता है।

पनघट शिलाओं का पूजन

पंगवाल-जनजाति पनघट शिलाओं का भी विधिवत् पूजन करती है। लुज और साहली की ऐतिहासिक पनघट शिलाएं लोगों द्वारा बराबर पूजी जाती हैं। साहली की शिला पर खुदे शिव, गणेश, ब्रह्मा और विष्णु का पूजन किया जाता है। इस प्रकार पंगवाल लोग पक्के धार्मिक हैं जो प्राकृतिक शक्ति के पूजन के अलावा अपने पुरखों (पित्रों) और पौराणिक देवी-देवताओं का पूजन भी करते हैं।

सिद्धों और नाथों का प्रभाव

ऐसा लगता है कि पंगवालों को सिद्धों और नाथों ने अधिक प्रभावित नहीं किया है। सारी घाटी में सिद्ध का एक छोटा-सा मन्दिर दिखाई दिया है। सिद्ध और नाथ परम्पराएं भी न के बराबर देखने को मिली हैं।

देवताओं का वर्गीकरण

उपर्युक्त विश्लेषण से सिद्ध होता है कि पंगवाल जनजाति शाक्त अधिक और वैष्ण कम है। यदि यह कहें कि पंगवाल जनजाति वैष्णव धारा में तनिक भी प्रवाहित नहीं हुई है तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं। वे नाग के परम उपासक और पुजारी हैं। नाग उनका अन्नदाता है, पानी का स्रोत है, वर्षा का नियन्त्रक है, पशु पालक और रक्षक है। उसके पूजन बिना न ही चूंरी और न ही गाय का दूध और घी खाया जाता है। वह चरागाहों का मालिक है। उसकी अवहेलना करना पशुधन को हानि पहुंचाना है। देवी पंगवाल जनों के लिए माता है। वह उसकी रक्षक है, दुख निवारक है, व्याधिनिवारक है, राक्षसों का संहार करती है, दुख भंजक है। वह घर में, वन में और कहीं भी मनुष्य के साथ होनी चाहिए। उसकी मान्यता अति आवश्यक है। पंगवाल शिव उपासक भी हैं। उनके लिए शिव ऊंचे कैलास पर्वत पर रहता है। उनकी गतिविधियां वहीं से देखता रहता है। वह सृष्टि का संहारक है। शिवरात्रि को उसकी विधिवत् उपासना की जाती है। पुनह के समय उसका लिंग रूप में पूजन किया जाता है तथा उसकी अंचली (स्तुति) गाई जाती है अतः स्पष्ट है कि पंगवाल-जन शाक्त होने के साथ-साथ नाग उपासक भी हैं।

भोट जनजाति की धार्मिक आस्था

पांगी क्षेत्र में भोट जनजाति के लोग अपनी एकांत और शांत पर्वतीय-भुटोरियों में रहते हैं। वे महात्मा बुद्ध के सिद्धांतों का पालन करते हैं अतः वे अपने बौद्ध मन्दिरों में पूजा-अर्चना करते हैं। उनके गोंपों में महात्मा बुद्ध और अन्य बोधिसत्वों की मूर्तियां बनी रहती हैं। बौद्ध गोंपों में महात्मा बुद्ध सम्बन्धी जातक कथाओं की चित्रकारी भी भित्तिचित्रों में मिलती है। सुराल भुटोरी इन भुटोरियों में अपना विशेष स्थान रखती है। यहां गोंपा गांव के समीप ही एक सुन्दर पहाड़ी पर बना है। गोंपे के एक ओर भोजपत्र के वृक्ष एक झुंड में खड़े हैं। इनके चौड़े पत्ते, श्वेत तने और साथ में झूमती टहनियां यात्री के मन को आह्लादित करती हैं। इन वृक्षों को वे बहुत पवित्र मानते हैं। गोंपे के मुख्य कक्ष में तीन आदम कद प्रभावशाली मूर्तियां खड़ी हैं जो गच (Stucco) की बनी हैं। ये मूर्तियां संभवतः महात्मा बुद्ध तथा अन्य बोधिसत्व (रिन पोचे) विरोचन और पद्मसम्भव की हैं।

दीवार पर बौद्ध धर्म सम्बन्धी कथाओं का सुन्दर ढंग से चित्रण हुआ है। गोंपे की अंदरूनी छत (सीलिंग) पर भी सुन्दर चित्रकारी हुई है। सीलिंग के मुख्य बीम को सहारा दिये स्तम्भ पर भी बेलबूटे के रूप में सुन्दर काष्ठ कार्य हुआ है। मूर्तियों के सामने पूजा के उपकरण रखे हैं। इतने दुर्गम स्थल पर इतनी सुन्दर कलाकारी करना एक आश्चर्य है। सभी पंगवाल लोग गोंपे को समानरूप से मानते और नतमस्तक होते हैं। भुटोरी में और खेतों में पत्थर के गोल चबूतरे पर एक लकड़ी गाड़ी हुई मिलती है। इस प्रकार के ढांचे को भोटजन 'छोरतन' कहते हैं। इसकी परिभाषा देते हुए किसी विद्वान् ने लिखा है—"Remarkable Type of Structure The Chhorten, the word means literally receptable of worship"

वास्तव में इसमें किसी बोधिसत्व (रिनपोचे) की भस्म रखी रहती है। लाहौल घाटी में ये आम खेतों और गांव में देखे जा सकते हैं। सुराल गोंपा के पुजारी श्रीकर्मचन्द ने जानकारी देते हुए बताया कि भोट महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों का पालन करते हैं और बलि देने में कतई विश्वास नहीं रखते। ❑

षष्ठ अध्याय

सामाजिक मान्यताएं

सामाजिक व्यवस्था

संयुक्त परिवार प्रथा

पंगवाल लोग संयुक्त परिवार-प्रथा को पसंद करते हैं। पिता घर का मुखिया होता है। घर का सारा कार्य उसकी देख-रेख में होता है। पिता की मृत्यु के बाद उसका बड़ा पुत्र घर का मुखिया होता है। पंगवाल जनों की आर्थिक अवस्था कमज़ोर और भूमि की उपजाऊ शक्ति कम होने के कारण संयुक्त परिवार व्यवस्था लाभप्रद समझी जाती है। इसके सम्बन्ध में लेखक की श्री गौरी दास, ग्राम लुज निवासी से भेंटवार्ता हुई। श्री गौरी दास किलाड़ में ग्राम सेवक लगे हैं। उन्होंने संयुक्त परिवार के पक्ष में अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने अपने संयुक्त परिवार का उदाहरण दिया जो एक प्रकार से नए माहौल में ढलने पर भी उसी प्रकार संयुक्त-परिवार के आदर्श को बनाए हुए है। उनके बड़े भाई सोहनलाल जी हैं जो मुखिया हैं तथा घर की व्यवस्था को देखते हैं।

सोहनलाल जी से छोटे गौरी प्रसाद जी हैं जो सरकारी कर्मचारी होते हुए भी परिवार की जिम्मेवारियां निभा रहे हैं। उनसे छोटे श्री सूरदास जी लुज पंचायत के प्रधान हैं। उनसे छोटे श्री बाबूराम जी पुलिस के सह-सहायक निरीक्षक (Sub Inspector) लगे हैं जो चम्बा में तैनात हैं। सबसे छोटे श्री विशनचन्द लीगल-ऑफीसर लगे हैं और भारत की किसी अन्य स्टेट (राज्य) में कार्यरत हैं। आप सभी विवाहित हैं तथा सभी बाल-बच्चेदार हैं परन्तु हर कार्य किसी व्यवधान के बिना सुचारु ढंग से चला है।

उन्होंने तीन-चार सौ के लगभग सेब, नाशपाती, अखरोट, बादाम

इत्यादि के पौधे तैयार किए हैं जिनमें से कुछ बढ़िया फल दे रहे हैं। उनकी रहन-सहन की प्रक्रिया आधुनिक ढंग की है। प्रधान श्री सूरदास ने बताया कि उन्होंने शहर चम्बा में भी अपना मकान बना लिया है।

उनके कुछ बच्चे महाविद्यालय चम्बा में भी पढ़ रहे थे। लेखक ने उनसे पूछा कि क्या वह धीरे-धीरे पांगली से निर्वास कर जायेंगे, उनका उत्तर था कि पांगी में उन्होंने बाग-बगीचे इसीलिए लगाये हैं कि वह वहां अपनी स्थायी सम्पत्ति को और भी उन्नतशील बनायेंगे। उनके परिवार की बहुमुखी प्रगति को देखकर लगता था कि सयुंक्त परिवार में कोई कमी नहीं। इसी प्रकार का उदाहरण सुराल-घाटी में श्री रोशनलाल मास्टर के संयुक्त परिवार से मिलता है। कहीं-कहीं वैमनस्य होने पर संयुक्त परिवार में विघटन भी हुआ है। यदि स्त्री जाति का संयुक्त परिवार में शोषण न हो तो संयुक्त परिवार में वहां गुण ही गुण हैं।

गांव का आपसी भाईचारा

पंगवाल लोग गांव में एक बड़े परिवार के रूप में रहते हैं। गांव के युवक और युवतियां आपस में भाई-बहन की तरह रहते हैं। यही कारण है गांव के युवक-युवती आपस में विवाह नहीं करते। वे एक दूसरे के सहायक सिद्ध होते हैं। नया मकान बनाना, विवाह की सामग्री जुटाना, मकान के लिए जंगल से इमारती लकड़ी ढोना इत्यादि कार्य गांव के आपसी सहयोग से किए जाते हैं।

प्रजा प्रणाली

पांगी क्षेत्र में प्रजा-प्रणाली एक अद्‌भुत सामाजिक व्यवस्था है। वास्तव में परिवार समाज की एक प्राथमिक इकाई है। गांव परिवार से बनता है अतः यह परिवार का एक समूह है जिसे हम बड़ा परिवार कहते हैं। गांव का समूह प्रजा का रूप धारण करता है। प्रजा एक प्रकार का सामाजिक भाईचारा है जो सामाजिक नियमों का पालन करते हुए एक बड़े परिवार की तरह हर दायित्व को निभाता है। उसके नियम को तोड़ना एक प्रकार से सामाजिक बहिष्कार है।

किसी कार्य के पालन के लिए प्रजा की एक बैठक होती है जिसे—'माओट' या तजोट या टजोट कहते हैं। हर व्यक्ति या परिवार का एक सदस्य प्रजा का सदस्य है जिसे वे ग्राउंठ भी कहते हैं। प्रजा-प्रणाली

पंचायत-प्रणाली से अलग संस्था है। पंचायत के सदस्य और प्रधान जनता द्वारा चुने जाते हैं जबकि प्रजा का चुनाव ऐसे नहीं होता है। लेकिन अब कहीं-कहीं लोग प्रजा में भी चुनाव करने लगे हैं जो एक प्रकार से घुसपैठ है और प्रजा की परम्परागत प्रथा की अवहेलना है। कहीं-कहीं दो-दो और तीन-तीन गांवों की अलग-अलग प्रजा है। समस्त पांगी क्षेत्र की अपनी एक बड़ी पंगवाल प्रजा है। दूसरे शब्दों में प्रजा एक आपसी भाईचारा है जिसके नियम पंगवाल समाज को एक माला में गुंथे हुए हैं।

पंगवाल-जनजाति में स्त्री का स्थान

पंगवाल समाज एक पितृ प्रधान समाज है। पांगी में बहुपति (Polyandry) जैसी कुप्रथाएं प्रचलित नहीं हैं अतः स्वाभाविक है कि पंगवाल एक पितृप्रधान समाज है। पंगवाल युवती की इस इच्छा का माता-पिता पूर्ण ध्यान रखते हैं कि जिस लड़के से उसे परिणयबंधन में बांधा जा रहा है क्या वह उसे पसंद भी करती है या नहीं। इसीलिए विवाह की 'पिलम' अवस्था में लड़का और लड़की आपस में मिल लेते हैं। अनमेल विवाह के समय अन्य समाज की तरह तलाक को भी वैध समझा जाता है। यदि कोई कुमारी किसी युवक के साथ विवाह करना चाहे और माता-पिता उसमें बाधक बनें तो जबरन शादी (Forced Marriage) के गुप्त समझौते से हल निकाला जा सकता है जिसे समाज वैध ठहराता है। इस प्रकार स्त्री की स्वतंत्रता का विशेष ध्यान रखा जाता है।

पंगवाल स्त्री पुरुष के साथ खेत-खलिहान में कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती है, केवल खेत में हल चलाना उसके लिए वर्जित है। वह अच्छी गृहिणी भी है। घर में ऊन कातना, पशु की देखभाल, घरेलू उद्योग उसका नियत कार्य है। वह आदर्श पत्नी और आदर्श मां भी है।

पांगी क्षेत्र में अन्य समाज की तरह एक ही पत्नी होती है। कहीं अपरिहार्य कारणों से दो पत्नियां हो सकती हैं। पुत्र-कामना इसका कारण हो सकता है।

शिक्षा के प्रसार से स्त्री समाज की दशा

अब पांगी-क्षेत्र में स्थान-स्थान पर स्कूल खुल गए हैं अतः पंगवाल कन्याएं शिक्षा ग्रहण करने में आगे आ रही हैं परन्तु लड़कों की अपेक्षा

उनकी संख्या बहुत कम है। कुछेक महिलाएं पढ़-लिखकर सरकारी मलाजमत में आ गई हैं परन्तु इनकी संख्या उंगलियों पर गिनी जा सकती है। अभी तक पंगवाल समाज को इस ओर अग्रसर होना है।

भोट जन जाति और उनकी सामाजिक दशा

वास्तव में भोट-जाति पंगवाल जनजाति से भी शिक्षा के क्षेत्र में काफी पिछड़ी है। वे लोग बहुत ही पिछड़े क्षेत्र में रहते हैं अतः आगे नहीं आना चाहते। उनकी बस्तियों में भी सरकार ने स्कूल खोलने की कसर नहीं छोड़ी है।

भोट-जनजाति का पितृ प्रधान समाज है। वे अधिकतर पशु-पालक हैं। वे बहुत ऊंचे पर्वतों पर रहते हैं। आलू, एलो, फुलन और भरेस के सिवाय उनके यहां फसल कम होती है अतः पशु-पालन पर अधिक ध्यान देते हैं। उनका अपना भाईचारा है परन्तु प्रजा के कार्य क्षेत्र में वे बराबर बने रहते हैं।

सम्पूर्ण पांगी में पंचायत प्रणाली अन्य क्षेत्रों की तरह लागू है जिस पर सरकारी नियन्त्रण है परन्तु पंचायत का प्रजा प्रणाली के क्षेत्र में कोई हस्तक्षेप नहीं है।

सामाजिक सहयोग प्रथाएं

समाज जितना पिछड़ा होगा उतना ही वह सुसंगठित होगा। आपसी मेल-मिलाप, भाई-चारा, कड़े सामाजिक नियम, एक-दूसरे के सुख-दुःख का ध्यान, पुरातन परम्पराओं का आदर इत्यादि भावनाएं अटूट रूप से निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं। इन परम्पराओं का आदर करना वे अपना परम धर्म समझते हैं। धोखाधड़ी, निर्दयता चोरी-चकारी और छल-कपट से वे कोसों दूर रहते हैं।

मितव्ययिता उन्हें लालच और लूट-खसूट से दूर रखती है एवं उपलब्ध रोजगार, पशु-पालन और गुजारे के अनुसार कृषि उन्हें सन्तुष्ट रखती है। कचहरी के झगड़े से दूर वे आपसी मेल-मिलाप और आपसी समझौते से रहना श्रेयस्कर समझते हैं। हलचल के वातावरण से विरक्त और ऊंचे पर्वत की शान्त चरागाहों में बांसुरी की मीठी तान उन्हें कहीं अधिक आनन्ददायक लगती है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपनी भेड़-बकरियों के साथ घूमना उन्हें अन्य झंझटों से मुक्त और स्वतन्त्र रखता है। इधर रावी और चन्द्रभागा घाटियों में रहने वाले परिवार के अन्य सदस्य अपने थोड़े से खेतों में कार्यरत रहकर अपने को श्रेयस्कर समझते हैं। पांगी और भरमौर की जनजातियों में सदियों से निरन्तर प्रवाहित अनुकरणीय सहयोगी परम्पराएं विद्यमान हैं जिनका वर्णन अनिवार्य है। यद्यपि इस प्रकार की सहयोग की भावना अन्य आधुनिक विकसित समाज में भी अंशतः प्रचलित है। फिर भी उनमें इस प्रथा के मूलभूत तत्त्व विस्मृत हो चुके हैं। वे केवल अवशेष मात्र रह गए हैं जो कालान्तर में विलुप्त हो जाएंगे। उनमें वह स्वच्छंदता नहीं जो जनजातीय समाज में पाई जाती है।

विवाह-उत्सव पर जनजातीय लोग अपना पूर्ण सहयोग देते हैं। हर कार्य के लिए सम्पूर्ण, गांव एक परिवार की तरह सेवारत होता है। पांगी में तो सारी प्रजा ही सम्पूर्ण कार्य में जुट जाती है। भरमौर में सभी गांववासी हर कार्य में हाथ बंटाते हैं। 'छोई' (विवाह के लिए लकड़ी

काटना) के लिए केवल कहने की आवश्यकता भर है फिर सभी परिवारजन काम में जुट जाते हैं। एक ही दिन में विवाह के लिए लकड़ी इकट्ठी कर ली जाती है।

इसके अतिरिक्त घर की लिपाई-पोताई में पड़ोस की सभी महिलाएं अपना योगदान देती हैं। विवाह के लिए जिन्स की छंटाई-सफाई भी आस-पड़ोस की महिलाएं करती हैं। विवाह से काफी दिन पूर्व प्रतिदिन गाना-बजाना भी चलता है। घराट दूर-दूर होते हैं अतः आटा पिसाई जिसे स्थानीय भाषा में 'मात्रा' पिसाई कहा जाता है—गांव के लोगों द्वारा ही यह सारा काम किया जाता है। हर व्यक्ति ऐसे मौके पर हाथ बंटाना अपना कर्तव्य समझता है। घर के मालिक का काम केवल निर्देश देना ही होता है चाहे लड़के का विवाह हो चाहे लड़की का। घर के मालिक की आर्थिक दशा कैसी भी हो वह अपने गांव के लोगों से आवश्यकतानुसार 'चड़' लेना अपना अधिकार समझता है। 'चड़' का अर्थ विवाह के समय अन्न उधार लेने से है जिसे उसी माप में 'चड़' देने वाले व्यक्ति के घर विवाह होने पर वापस किया जाता है।

इस प्रकार उसे विशेष जिन्स खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ती। भरमौर के संलग्न क्षेत्र में बीस या पच्चीस किलोग्राम प्रति परिवार 'चड़' देने की प्रथा है। (चड़) लेना घर के मालिक की जरूरत पर निर्भर करता है। इस प्रकार उसकी आर्थिक स्थिति पर बोझ नहीं पड़ता। इसी प्रकार सगे-सम्बन्धियों द्वारा लड़के को विवाह के समीप 'लूढ़ेक' खिलाने की प्रथा है। 'लूढ़ेक' का अर्थ प्रतिभोज है जो विवाह के समीप आने पर लड़के को खिलाया जाता है। इसके अतिरिक्त आस-पड़ोस के गांववासी कच्ची लूढ़ेक देना अपना कर्तव्य समझते हैं। वे एक या दो किलोग्राम चावल ऐसे समय लड़के के लिए लाते हैं। लड़के के विवाह पर जहां सगे-सम्बन्धी टीके के साथ कपड़े भी देते हैं वहां अन्य लोग भेंट रूप में नकद पैसे देते हैं।

लड़की के विवाह के समय सगे-सम्बन्धी लड़की को कपड़े, पैसे और कोई वस्तु जैसे थाली, लोटा या अन्य उपयोगी वस्तु 'सुआज' अन्य लोग अपनी इच्छानुसार लड़की को कोई वस्तु या नकदी भेंट स्वरूप देते हैं।

अन्य उत्सवों पर जैसे नुआला, गसेतन, ब्रह्मभोज, कथा और प्रतिष्ठा

इत्यादि पर भी हर प्रकार का सहयोग गांववासियों का बना रहता है। 'चड़' प्रणाली भी उसी तरह मौजूद रहती है।

हर समाज में गृह निर्माण का कार्य काफी कठिन समझा जाता है। घर निर्माण करने वाला व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से कमजोर पड़ जाता है उसे असाधारण श्रम भी करना पड़ता है, शारीरिक तौर पर भी वह क्षीण हो जाता है। अतः समाज का हर व्यक्ति भवन निर्माता की सहायता करना अपना कर्तव्य समझता है। घर के निर्माण के लिए स्थान को समतल करने के लिए खुदाई (स्थानीय भाषा में उकरीख) का काम कठिन समझा जाता है। इसके लिए गांववासी सहायता करते हैं।

पत्थर ढोना, चिनाई कराना, छत डालना (घर की छवाई) इत्यादि काम लोगों की सहायता से कराये जाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि सहायता लेने से कार्य पूरा हो जाता है, गृह-निर्माण के हर भाग का काम आंशिक रूप से सहायता द्वारा होता है। शेष कार्य मालिक को स्वयं करना पड़ता है। 'न्हार्स (लम्बा शहतीर) लाने का कार्य तो हर दशा में सामूहिक ही करना पड़ता है। हर घर के लिए पांच या सात ऐसे शहतीर तो जंगल से लाने पड़ते हैं। इस प्रकार की प्रथाएं पंगवाल और गद्दी जनजातियों में एक समान चलती हैं।

इसी प्रकार निराई-गुड़ाई के कार्य भी कहीं-कहीं सामूहिक होते हैं। फसल की कटाई, अन्न का भण्डारण इत्यादि कार्यों में हाथ बंटाते हैं।

जब कोई बीमार हो जाये और उसकी फसल का कार्य पिछड़ गया हो तो सभी लोग मिलकर उसकी फसल लगा देते हैं या निराई-गुड़ाई का कार्य यथासमय कर देते हैं। उस समय आपसी भेद-भाव और वैमनस्य को पूर्णतया भुला दिया जाता है।

गांव में मृत्यु हो जाने पर सबकी सहानुभूति मृतक के परिवार के प्रति स्वाभाविक है। उनके कार्य में हाथ बंटाने की प्रथा तो अन्य समाज में भी प्रायः प्रचलित है। पंगवाल क्षेत्र में इसके अतिरिक्त उस परिवार को सहायता के रूप में थोड़ा-थोड़ा अन्न देने की भी प्रथा है।

इस प्रकार जनजातीय लोग एक-दूसरे का सहयोग कर समाज के कार्य को सहज बनाते हैं।

समाज व्यवस्था

चम्बा के जनजातीय क्षेत्र पांगी और भरमौर आज भी दुर्गम क्षेत्र बने हुए हैं। अब तो कई प्रकार की सुविधाएं हो गई हैं। यातायात, संचार और बिजली द्वारा प्रकाश की सुविधाएं प्राप्त हो गई हैं। वायुयान (हेलीकॉप्टर) की उड़ान की सुविधा भी कुछ हद तक मिल गई है परन्तु आज भी कुछ गांव इतने दूर हैं कि वहां पैदल चलना पड़ता है। भरमौर के दुर्गम गांव कुगति और खनार यातायात की सुविधा से काफी दूर हैं। पांगी में हुडान-सेचुनाला, टवान अभी मैदल मार्ग से जुड़े हैं।

यद्यपि राष्ट्रीय सीमा संगठन सड़क निर्माण में पूर्णतया तत्पर है फिर भी पुरथी से किलाड़ तक का लगभग 40 कि॰ मी॰ का इलाका पैदल चलना पड़ता है। किलाड़ से संसारी नाला का 28-30 कि॰ मी॰ का मार्ग अभी जीप के लिए निर्माणाधीन है अतः अभी तक पांगी घाटी की यात्रा पैदल ही करनी पड़ती है। अब खच्चर लगभग पांगी और भरमौर के हर गांव तक जाती है, वह भी समय था जब इन इलाकों में जिन्स भेड़-बकरियों की पीठ पर लादकर पहुंचाई जाती थी। उस समय समाज अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करता था।

यही धारणा रहती थी कि बाहर से कम से कम सामग्री मंगाई जाये। वह भी समय था जब जनजातीय समाज अपनी आवश्यकता के लिए आत्मनिर्भर रहना सीख गया था। वह अपनी भेड़ों से ऊनी कपड़े तैयार कर लेता था। उसे सूती कपड़े नहीं मंगाने पड़ते थे। अदल-बदल (Exchange) से वह अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। आस-पास के क्षेत्रों के लोग सरसों के तेल और लाल मिर्च के बदले में ऊन ले आते थे। जनजातीय लोगों को बढ़िया से बढ़िया सामग्री ऊन के बदले मिल जाती थी। परन्तु उनकी नमक की समस्या कठिनाई से हल होती थी।

उन दिनों दुकानें भी तो नहीं होती थीं अतः इस आवश्यकता को स्वयं दर्रे लांघकर कठिनाई से पूर्ण करते थे। भरमौर के जनजातीय लोग

तो छः मास के लिए जालंधर चले जाते थे। पंगवाल अपने घरों में ही रहते थे। प्राचीन काल में जब सिक्के का प्रचलन नहीं था, उस समय समाज को संगठित करने की आवश्यकता पड़ी होगी। उस समय चौथे वर्ग के लोगों ने समाज की सेवा संभाली। उन्हें बदले में जीवनयापन की सुविधाएं प्राप्त हो जाती थीं।

इन समाजसेवी जातियों को हम कर्मकार की संज्ञा दे सकते हैं। स्थानीय लोग उन्हें कमीणा जातियां (काम करने वाली जातियां) कहकर पुकारते थे। आज भी उन उद्यमी जातियों ने कई प्रकार के समाजोपयोगी काम संभाले हैं। आज भी ये कर्मकार जातियां उसी तरह हैं परन्तु अपनी-अपनी समस्याओं के कारण धीरे-धीरे टूटती जा रही हैं जो इस प्रकार है—

बाजदार (वाद्ययंत्री) द्वारेला, ठठियार (रिहाड़े), लुहार, कुम्हार, बर्ड, चर्मकार (चमार), शिप्पी।

इन का परिचय क्रमशः निम्न प्रकार से है—

बाजदार

वाद्य-यन्त्री को स्थानीय भाषा में 'बाज़दार' कहते हैं। बाज़दारों का काम विवाह, उत्सव, यात्रा, मृत्यु संस्कार के समय ढोल, नगारे और शहनाई बजाने का है। हर परिवार का अपना वाद्य-यन्त्री होता है। लेकिन एक 'बाजदार' कई परिवारों से सम्बद्ध हो सकता है। इस प्रकार तीन-चार बाज़दार परिवार पूर्ण परगने को अलग-अलग रूप में संभालते हैं, जिन्हें किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर बुलाया जा सकता है।

वह साज बजाने का कर्तव्य निभाता है। वह इसके लिए अपने जमींदार से दो 'मार्णी पथ अन्न प्रति फसल प्रति परिवार लेता है। कई परिवारों के घर कोई उत्सव कई वर्षों तक नहीं भी आता परन्तु फिर भी वह अपना भाग प्रति परिवार वसूल करता है। उसका कर्तव्य है कि किसी भी समय अपने यजमान के घर हो रहे उत्सव में वाद्ययंत्र बजाए और जमींदार का कर्तव्य है कि उसको नियमानुसार हर फसल पर निश्चित 'खलोथीं दें। 'खलोथी' का अर्थ निश्चित अन्न दान से है जिसे उसने कर्मकार को देना होता है।

विवाह, प्रथम लड़के की उत्पत्ति या अन्य प्रसन्नता के मौके पर

बाजदार का अधिकार होता है कि वह अपने यजमान से बधाई के रूप में कुछ भेट प्राप्त करें। यह परम्परागत बाजदारी प्रथा पता नहीं कब से आ रही है। अब जब कि बैंड पार्टियां स्थान-स्थान पर बन गई हैं बाजदारी प्रथा डगमगाने लगी है। कहीं-कहीं यह चरमरा उठी है।

द्वारैला

द्वरैला का काम विवाह-उत्सव के समय प्रवेश द्वार को चित्रित करना है। यह भी अपने-अपने यजमान परिवारों से जुड़ा होता था। उसका अन्य कार्य लड़की के विवाह के समय आंगन में वेदी लगाना भी होता है। उसे द्वार को चित्रित करने और वेदी लगाने का निश्चित मेहनताना देना होता है। अब इस जाति का कार्य भी कई कारणों से ढीला पड़ता जा रहा है।

ठठियार (रिहाड़ा)

पांगी क्षेत्र में इस जाति का काफी उद्योग चलता था। बाजार से सस्ते दामों में वस्तुएं बर्तन इत्यादि मिल जाना और उन्हें अपनी मेहनत का उचित दाम न मिलने से इस कर्मकार जाति को निराशा का मुख देखना पड़ा है।

लुहार

जनजातीय क्षेत्र भरमौर और पांगी में यह कर्मकार जाति खूब पनपी है। पुराने समय में जब लोहा बहुत दूर से मंगाना पड़ता था, ये लोग कच्चा लोहा स्थानीय तौर पर खुदाई कर प्राप्त कर लेते थे। उसी लोहे से वे अपने इलाके के जमींदारों को औजार बनाकर देते थे। आज भी भरमौर के 'घुड़ैठ' गांव में खुदाई के अवशेष दृष्टिगोचर हैं। बाज़दार की तरह हर परिवार का अपना लुहार होता था। वह अपने सम्बन्धित परिवारों को औजार घड़ देता था। उनके औजारों को तेज भी कर देता था। इसके बदले में उसे भी निश्चित 'पथ' प्रति फसल प्रति परिवार खलोथी दी जाती थी। कुछ लुहार प्रति परिवार एक किल्टा मक्की का प्राप्त कर लेते थे। यह प्रथा 'बाज़दार' की तरह अब भी जीवित है परन्तु अब स्थानीय तौर पर लोहा नहीं निकाला जाता। अब मालिक अपना लोहा बाजार से ले आता है और लुहार से औजार बनवा लेता है।

कुम्हार

कुम्हार भी इसी प्रकार मिट्टी के बर्तन बनाकर अपने जमींदार को

आवश्यकतानुसार देता था और बदले में 'खलोथी लेता था परन्तु आज पीतल और सिल्वर के बर्तनों ने उनके उद्योग को ठेस पहुंचाई है। अब ऐसे कुम्हारों की कमी पड़ गई है।

बर्ड

बर्ड आवश्यकतानुसार टोकरियां और किल्टे बनाता था। यह बांस की तरह के पौधे 'नंगाल से ये वस्तुएं घर के काम-काज के लिए बनाता था। भरमौर के संलग्न क्षेत्र में बर्ड जाति के लोग अधिक संख्या में पाए जाते थे। ये अधिकतर पेशेवर लोग हुआ करते थे। धीरे-धीरे अन्य लोग इस कार्य को स्वयं करने लगे। अतः इनकी आवश्यकता न समझी जाने लगी। अब बहुत से लोग मैदानी इलाकों से ही बांस की बनी छोटी-छोटी वस्तुएं साथ ले आते हैं। जंगल कट जाने के कारण 'नंगाल' नामक पहाड़ी बांस भी कम होने लगा है। अब भी लोग स्वयं किल्टे ढंढु इत्यादि इसी से बनाते हैं।

बढ़ई और शिप्पी

लकड़ी का काम प्रायः बढ़ई और शिल्पी लोग करते थे। इसीलिए पेशे के आधार पर बढ़ई जाति का प्रचलन हुआ। भरमौर के शिप्पी लकड़ी का काम करने और भवन निर्माण की कला में सिद्धहस्त थे। आज भी इस जाति के लोग भरमौर के जगति नामक गांव में काष्ठ के उत्कृष्ट बर्तन बनाते हैं। इनके बने काष्ठ के बर्तनों के नमूने भूरिसिंह संग्रहालय चम्बा में देखे जा सकते हैं।

चर्मकार

चर्मकार जातियां भी स्थान-स्थान पर अपना पेशा संभाले थीं। वे लोग पशुओं की चिकित्सा करने में भी सिद्धहस्त होते थे। आज पशु चिकित्सा कार्य स्थान-स्थान पर कार्यरत पशु-चिकित्सक सरकारी डाक्टरों द्वारा किया जाता है परन्तु आज से तीस-चालीस वर्ष पहले जन-जातीय क्षेत्रों में यह सुविधा नहीं थी। अतः यह महत्त्वपूर्ण कार्य चर्मकार चमार जाति द्वारा किया जाता था। वे चमड़े की वस्तुएं भी बनाते थे। जनजातीय लोगों को चमड़े से बनी वस्तुओं की खरीद के लिए बाहर नहीं जाना पड़ता था। उस समय आज जैसे प्लास्टिक-उद्योग का फैलाव नहीं था। इस कर्मकार जाति को भी भरण-पोषण के लिए जमींदार लोग 'खलोथी दिया

करते थे साथ ही अन्य सुविधाएं भी इन लोगों को दी जाती थीं। धीरे-धीरे उन लोगों ने इस कार्य को तिलांजलि देकर अन्य पेशे संभाल लिये। अब चर्मकार जैसी कर्मकार-जाति जनजातीय क्षेत्र में कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

पूजापद्धति

विभिन्न देवी-देवताओं की पूजन विधियां

पांगी और भरमौर जनजातीय लोगों में देवताओं के प्रति अगाध आस्था है। केवल पांगी के भोट लोग बौद्ध हैं जैसे कि देवी-देवताओं के अध्याय में स्पष्ट किया गया है। उस अध्याय में विस्तार से यह नहीं बताया गया है कि देवी-देवताओं के पूजन के लिए अलग-अलग क्या विधियां हैं। भोट लोग बौद्ध गोंपों में अपनी विधि से पूजन करते हैं। वे अन्य देवी-देवताओं को नहीं मानते परन्तु मिंधला वासिनी को वे समान रूप से मानते हैं परन्तु बलि देना उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध है। इसी प्रकार लाहौल में त्रिलोकनाथ को वे समानरूप से मानते हैं। इसका बहुत बड़ा कारण यह है कि त्रिलोकनाथ को वे अवलोकितेश्वर या अमिताभ बोधिसत्व मानते हैं। जबकि हिन्दू त्रिलोकीनाथ अर्थात् शिव रूप मानते हैं। हम जहां काली का पूजन करते हैं भोट उसी को 'तारा या रदोर्ज़फागमों' मान बैठते हैं। लाहौल में उदयपुर में 'मृकुला भगवती' को जहां हिन्दू काली के रूप में महिषासुर मर्दिनी मानते हैं, वहां भोट व बौद्ध उसे रदोर्ज फागमों के रूप में मानते हैं अतः देवी-देवताओं को मानने की अपनी-अपनी विधियां प्रचलित हैं। जहां भोट गोम्पों में अपनी विधि से पूजन करते हैं वहां पंगवाल हिन्दू उन्हीं गोम्पों में उन भोटों की विधि अनुसार पूजा-अर्चना करते हैं। बलि देना बौद्ध सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं अतः वे हिन्दू देवताओं को अपने दर्शन के अनुसार नाम दे बैठते हैं और अपनी विधि से उस देवता का पूजन करते हैं। गुरुनानक को भी बौद्ध भोटों ने अपने गोम्पों में अन्य बोधिसत्वों के साथ समान स्थान दिया है। उनके गोम्पों में पंगवाल हिन्दू भी घी की ज्योति जलाते हैं और फसल पकने पर नई फसल का प्रसाद चढ़ाते हैं।

अन्य देवी-देवताओं की पूजन विधिया

पांगी में नाग वर्षा का देवता है। अतः वह चरागाहों का मालिक

है। पशुधन का वह रक्षक है। अतः घी-दूध और छाछ से उसका पूजन किया जाता है। पंगवाल जनजातीय लोग गौ को दुहने पर उसका घी एक अलग बर्तन में डालकर रखते हैं। जहां पांगी के प्रौढ़ नाग को बलि दी जाती है वहां भरमौर के संलग्न क्षेत्र बेलज और गूं की चरागाह पर बैठे प्रौढ़ स्थानीय लोग प्रौढ़ न कहकर पढ़ौल कहते हैं नाग को बलि देना विवर्जित है।

यह नाग मांसाहारी नहीं है। इसी प्रकार मणिमहेश झील पर लाखों नर भेड़ों भेडू की बलि दी जाती है परन्तु उसी दिन उसी पर्व पर त्रिलोचन महादेव गूं क्षेत्र को बलि देना विवर्जित समझा जाता है। क्योंकि त्रिलोचन महादेव को निरामिष मांसाहारी नहीं माना गया है। जब त्रिलोचन महादेव के मन्दिर में प्रवेश करते हैं तो श्रद्धालु उन कपड़ों को बदलकर आते हैं जिन कपड़ों को पहनकर मांस खाया हो। यह दशा पढ़ौल प्रौढ़ नाग के बारे में भी है।

वर्षा न हो तो लोग नाग के मंदिर में उपवास रखकर अरदास करते हैं ताकि नाग देवता वर्षा करें।

पंगवाल लोग कहते हैं कि किलाड़ के दैंत नाग को रियासत के दौरान भैंसे की बलि दी जाती थी परन्तु अब नर भेड़ भेडू की बलि दी जाती है। कहीं-कहीं नाग देवता को 'पंजबला' देने की प्रथा भी है। पंजबले का अर्थ पांच भेड़-बकरियों से है। पंजबला वर्ष में एक बार दिया जाता है जिसके लिए अंशदान एकत्रित किया जाता है। जहां भेड़-बकरी जैसे पशुओं का अब अभाव हो गया है वहां बलि प्रथा स्वयमेव समाप्त हो गई है। भरमौर और पांगी जैसे जनजातीय क्षेत्रों में बलिप्रथा अपनी चरमसीमा पर पहुंच गई है क्योंकि यहां भेड़-बकरियों की कमी नहीं है।

पांगी में जब एक बर्तन में नाग के निमित्त घी डाला जाता है तो दूसरे बर्तन में पितरों के लिए डाला जाता है। इस प्रकार देवता और पितृतरों का समानरूप से पूजन होता है।

पांगी में धच्ची धरती का पूजन हलवा और लुच्ची से किया जाता है। पूजन में घी का होना आवश्यक समझा जाता है।

चांदी का छत्र हर देवी-देवता को अपनी सामर्थ्य के अनुसार चढ़ाने की प्रथा हर स्थान पर प्रचलित है। अपनी श्रद्धानुसार कहीं साधारण प्रसाद

और धूप-दीप पर्याप्त समझा जाता है। सिन्दूर, केसर इत्यादि सभी देवताओं को मान्य है।

नाग के मंदिर में 'खांडे लकड़ी की बनी तलवार खड्ग 'हल' 'जूं' जुआ भी चढ़ाए जाते हैं। नाग के मन्दिर में लोहे या लकड़ी पर उकेरे सांप जिन्हें स्थानीय लोग 'सफलु' कहते हैं, चढ़ाये जाते हैं। बलि चढ़ाए पशुओं के सींगों को मन्दिर के प्रवेश-द्वार के :पर लगाये जाने की प्रथा भी जनजातीय क्षेत्रों में आम पाई जाती है। बलि चढ़ाए पशु का रुधिर मूर्ति और मन्दिर की दीवार पर छिड़का जाता है।

शीतला माता को रोग-निवारक देवी माना जाता है। हर परिवार इस देवी से चेचक, फोड़े-फुंसियों के बचाव के लिए प्रार्थना करता है और इसका पूजन करता है। इसे पांगी और भरमौर में समान रूप से माना जाता है। पांगी के धरवास क्षेत्र में लुज नामक गांव में इसका भव्य मन्दिर है जहां समस्त पंगवाल-जन इस देवी की आराधना करते हैं। उनका विश्वास है कि यह देवी सबको रोगमुक्त रखने की क्षमता रखती है।

नवरात्रे के दिनों हर जन-जातीय परिवार हर देव-स्थल पर जाकर यथाविधि पूजा-अर्चना करता है। यदि किसी देवता के स्थल पर पहुंचना असंभव हो तो उस देवता के लिए प्रसाद रखकर उसका अप्रत्यक्ष रूप से पूजन किया जाता है।

इस प्रकार देव-पूजन की विभिन्न विधियां जनजातीय लोगों में परम्परागत रूप से चली आ रही हैं जिनमें से कुछ लुप्त हो गई हैं और अन्य की तह तक पहुंचने के लिए पर्याप्त खोज की आवश्यकता है।

आर्थिक अवस्था

पंगवाल जनजाति मुख्यतः खेतिहर और पशुपालक हैं। पंगवाल जनजाति की सारी आर्थिक अवस्था इसी व्यवसाय पर आधारित है अतः वर्ष भर में पेट पालन और शरीर ढांपने का काम कठिनाई से होता है। यह जनजाति गद्दी जनजाति की तरह अर्ध घुमंतु भी नहीं है अतः सारा साल घर में रहने से आर्थिक दृष्टि से उनका कमज़ोर होना स्वाभाविक है। उनको सारा वर्ष स्थानीय फसलों और उपज पर ही गुज़ारा करना पड़ता है। उनकी आजीविका के आर्थिक आधार निम्नलिखित हैं–

स्थानीय फसलें

पांगी अत्यन्त ठंडा क्षेत्र है अतः ऊंचाई पर पैदा होने वाली फसलें ही यहां पर सम्भव हैं। इन फसलों में आलू, फुलन, भरेस, जौ, एलो, चणिया, गन्दम और सियूल इत्यादि हैं। गेहूं और जौ जैसी फसलें पकने और तैयार होने में काफी लम्बा समय लेती हैं परन्तु अन्य फसलें अपेक्षतया जल्दी पक जाती हैं। अतः इन फसलों को अधिक मात्रा में लगाया जाता है। निचले क्षेत्रों, जैसे लुज और धरवास में मक्की की फसल भी उपजाई जाती है। इन फसलों से भी वर्षभर का गुज़ारा कठिनता से होता है। उन्हें आत्मनिर्भर रहने के लिए अन्य व्यवसायों का सहारा भी लेना पड़ता है।

नकदी फसलें

नकदी फसलों में आलू, फुलन, भरेस और सियुल हैं लेकिन ये फसलें उनके खाने में प्रयोग होती हैं अतः कुछ ही लोग इन्हें बेच कर पैसा कमा सकते हैं। दूसरे यातायात की सुविधा न होने के कारण इन नकदी फसलों से आशाजनक मूल्य प्राप्त नहीं होता है। कुछ पंगवाल ज़रूरत की वस्तुएं खरीदने के लिए ऐसे सामान को अपनी पीठ पर उठाकर साच पास लांघ कर चम्बा की चुराह तहसील में तरेला नामक स्थान पर बेच कर कुछ जीवनोपयोगी वस्तुएं खरीद कर ले जाते हैं जो एक ज़ोखिम का काम है।

अब सरकार की ओर से पांगी क्षेत्र में सस्ता अन्न पहुंचाया जाता है अतः अन्नाभाव की समस्या किसी हद तक सुलझ गई है परन्तु अन्न

खरीदने के लिए काफी सरमाया खर्च करना पड़ता है जिसे अन्य तरीके से कमाना पड़ता है।

पशु-पालन

पंगवाल जन सीमित अवस्था में पशु-पालन करते हैं। गद्दी जनजाति की तरह वे भेड़, बकरियों के रेवड़ नहीं पाल सकते क्योंकि वे सर्दियों में घरों से बाहर नहीं जाते अतः अधिक संख्या में भेड़, बकरी पालने का मतलब उनके चारे की समस्या पैदा करना है जिसका सुलझाना कठिन है अतः पंगवाल आठ-दस भेड़ें और बकरियां प्रति परिवार पाल कर संतुष्ट होते हैं। अन्य पशुओं में देसी गाय और चूरी (सुरा गाय) पालते हैं। चूरी देसी गाय की अपेक्षा अधिक दूध देती है इसके दूध से घी की मात्रा भी अधिक मिलती है। घी भी अधिक पौष्टिक होता है। घाटी में जरसी गाय कहीं भी देखने को नहीं मिली है।

इसका कारण इस पशु को यहां पहुंचाने की समस्या है। अब जब यातायात कुछ सुधरा है इसके पालन की सम्भावनाएं बढ़ गई हैं क्योंकि लाहौल क्षेत्र में जरसी गाय पालने का काफी प्रचलन हो गया है। यहां से लाहौल के क्षेत्र को घी और मक्खन स्थानीय लोग निर्यात करते हैं। दूध से घी तैयार कर बेचा जा सकता है परन्तु दूध की मण्डी पांगी में नहीं है। लोग वर्ष में कुछ भेड़, बकरी बेचकर पैसा कमा लेते हैं।

ऊन पर आधारित उद्योग-धंधे

पंगवाल महिलाएं सर्दियों में ऊन कातती हैं। मर्द ऊनी कम्बल और पट्टू तैयार करते हैं। पंगवाल डिजाइनदार ऊनी कम्बल तैयार करने में दक्ष हैं। उन्हें देख आंखें चौंधिया जाती हैं। इन कम्बलों के मुंह मांगे दाम मिलते हैं। ऊनी पट्टी या पट्टु भी अत्यन्त आकर्षक होते हैं। इनके भी अच्छे दाम मिलते हैं। बकरी के बालों की भी डिजाइनदार चटाइयां तैयार की जाती हैं वे भी कम्बलों की तरह अधिक कीमत से बिकती हैं। आजकल एक कम्बल की 400-500/- रुपये कीमत है इतनी ही कीमत चटाई स्थानीय भाषा में 'थोबी', की भी मिल जाती है। पट्टू का मूल्य 300/- रुपये के लगभग मिलता है। पट्टू से एक कोट आसानी से बन जाता है। इस प्रकार घरेलू उद्योग-धंधे से कुछ आर्थिक लाभ अर्जित किया जाता है।

जंगली उपज

जंगली उपज में न्योज़ा (Chilgoza) काला जीरा, टांगी (Hazelnut) और अखरोट है जिसे इकट्ठा कर पैसा कमाया जाता है। गुच्छी (मशरूम), बनक्शा और ढींगरी (एक प्रकार की मशरूम) से भी आर्थिक लाभ कमाया जाता है, जंगली वनस्पतियां अपने लिए शाक-भाजी के रूप में प्रयोग में लायी जाती हैं।

जंगली जड़ी-बूटिया

जंगली जड़ी-बूटियों में धूप, कुठ, कौड, मीठी पतीस इत्यादि कीमती वस्तुएं हैं जिन्हें परमिट लेकर एकत्रित किया जा सकता है। ये वस्तुएं काफी कीमती हैं परन्तु जंगल में इनका अभाव होता जा रहा है।

खनिज-पदार्थ

पांगी में बहुत-से खनिज पदार्थ हैं। धरवास क्षेत्र में काफी मात्रा में अभ्रक मिलता है परन्तु इससे अब तक किसी को आर्थिक लाभ नहीं हुआ है। पांगी के समीप पाडर क्षेत्र में नीलम (Saphir) की खान है जहां लोगों को मज़दूरी मिल जाती है। कुछ लोग इस कीमती खनिज की टोह में भी जाते हैं।

मज़दूरी पर आधारित उद्योग

पंगवाल लोग अधिकतर मज़दूरी पर आधारित हैं। वे कुछ समय खेती-बाड़ी को देते हैं और बचे समय में मजदूरी करते हैं। सरकार के बहुत-से निर्माण कार्य चले हुए हैं अतः मजदूरी आसानी से तो नहीं पर प्रयत्न करने पर मिल जाती है। कारीगरी का काम उन लोगों को मिलता है जो राज या बढ़ईगिरी का काम जानते हैं। ऐसे मिस्त्रियों (Mason) को प्रतिदिन मज़दूरी अच्छी मिल जाती है। साधारण (Unskilled) मजदूरों को मजदूरी कम हिसाब से मिल जाती है। भवन निर्माण, सड़क निर्माण तथा अन्य विकास सम्बन्धी सरकारी कार्य ज़ोरों पर हैं। इस प्रकार निर्धन लोगों को आजीविका मिलती रहती है।

नौकरीपेशा लोग

कुछ लोग नौकरी पेशा भी हैं। कुछ तृतीय और कुछ चतुर्थ श्रेणी के सरकारी कर्मचारी हैं। उच्च पदों पर बहुत ही थोड़े अधिकारी हैं। आज तक एक भारतीय प्रशासनिक अधिकारी (आई॰ ए॰ एस॰) है। तीन-चार

सरकारी चिकित्सालयों में डॉक्टर हैं, दर्जन के करीब इंजीनियर तथा तीन के लगभग वनाधिकारी लगे हैं। एक-दो एच. ए. एस. की पदवी पा चुके हैं। एक पुलिस अधिकारी भी है लेकिन अन्य जनजातियों के अनुपात में पांगी क्षेत्र काफी पीछे रहा लगता है।

लोगों की आवश्यकताएं

आज लोगों की आवश्यकताएं बढ़ गई हैं। हर व्यक्ति अपने बाल-बच्चों को ऊंची शिक्षा दिलाना चाहता है अतः प्रत्येक परिवार की एक आवश्यकता अपनी सन्तान को सुशिक्षित कराना भी है जिसके लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। भोजन सामग्री भी प्राथमिक आवश्यकता है जिसे हर परिवार अपने खेतों से पूरा नहीं कर सकता।

पहनने के लिए कपड़ा भी अनिवार्य है। इस प्रकार पंगवाल जन को अपनी प्राथमिक आवश्यकताएं पूरी करने में भी असमर्थता दिखती है, संतोषजनक जीवन-यापन की तो बात ही अलग है। उसकी कमाई कम खर्च अधिक है।

समृद्धि की सम्भावनाएं

यातायात की सुविधाएं प्राप्त हो जाने के बाद पांगी एक अच्छा पर्यटन स्थल बन सकता है। स्थानीय लोग होटल जैसे उद्योग से काफी पैसा कमा सकते हैं। हलवाई की पांगी में कोई अच्छी दुकान नहीं है। किलाड़ जैसे विकासशील नगर में इस प्रकार का कार्य चलाया जा सकता है। स्थानीय बाज़ार को विकसित किया जा सकता है।

अभी तक पन-चक्कियों पर ही आटा पीसा जाता है। हाइडल प्रोजैक्ट के चालू होने पर कोल्हू और आटा पीसने की मशीनों का प्रचलन आर्थिक ढांचे को सुधार सकता है। सम्भावित बागवानी से भी लाभ प्राप्त हो सकता है। पांगी में निकट भविष्य में विकास की प्रबल सम्भावनाएं हैं।

❑

सप्तम अध्याय

लोक विश्वास

लोकविश्वास के लिए हम अंग्रेजी शब्द Folk-belief भी दे सकते हैं परन्तु अंग्रेज़ी के विद्वान् इसका पर्यायवाची शब्द Superstition प्रयोग करते हैं। Superstition का शाब्दिक अर्थ वास्तव में विश्वास होता है जिसमें घृणित विचारधारा है अतः हम इसे अन्धविश्वास शब्द न कहकर लोकविश्वास उपयुक्त शब्द मानते हैं। जो विश्वास लोगों में परम्परा से आ रहे हैं उसमें अंधविश्वास कहां। उसके प्रति तो लोगों का अकाट्य विश्वास है भले ही धीरे-धीरे वह विश्वास क्षीण हो गया हो। समाज की अपनी मान्यताएं हैं और वे सभी लोकविश्वास पर टिकी हैं। आपसी आचार-विचार, अभिवादन के तौर-तरीके, रीति-रिवाज, छोटे-बड़े का आदर करना, ये सभी ढंग सामाजिक लोकविश्वास पर ही तो टिके हैं।

यहां हम केवल उन्हीं लोकविश्वासों पर विचार करेंगे जो शुभ और अशुभ माने जाते हैं या जादू-टोने से सम्बन्ध रखते हैं। जिस बात को हम अशुभ मानते हैं, हो सकता है कि अन्य समाज उसे शुभ मानता हो। पंगवाल-जनों के अपने विश्वास और प्रथाएं हैं जो शायद अन्य समाज के लिए विलक्षण हों। देवी-देवताओं पर विश्वास तो समस्त हिन्दू जाति का है।

पंगवाल जन अन्य लोगों की तरह मंगलवार को एक दूसरे से अलग नहीं होना चाहते। लड़की को मायके से मंगलवार को विदा नहीं किया जाता। इसीलिए बारात सोमवार को दूल्हे के घर से नहीं जाती। इसी प्रकार देवताओं का पूजन रविवार और मंगलवार को शुभ माना जाता है। घर से जाते समय किसी का खाली बर्तन मिलना अशुभ है। यह विश्वास लगभग पहाड़ी संस्कृति में एक जैसा प्रचलित है। कौए का कुड़ेरना तो समान रूप से हर समाज में बुरा माना जाता है और तिस पर सूखे पेड़ पर उसका बोलना तो और भी बुरा और अशुभ माना जाता है। इसी

प्रकार उल्लू का घर के समीप के वृक्ष पर बोलना बुरा समझा जाता है। पंगवाल लोग उटेण और सिलह के दिन प्रातः ही पशुओं पर पानी का छिड़काव करते हैं। उस समय उनका कांपना शुभ माना जाता है। यदि न कांपे तो अशुभ माना जाता है।

उनका विश्वास है कि हथियार या मशाल के आगे राक्षस नहीं आते वे भाग जाते हैं इसलिए बारात में पटमहाराज अपने हाथ में तलवार रखता है। उनके लोक विश्वास के अनुसार शीतराज चन्द्रभागा नदी से धीरे-धीरे ऊपर की यात्रा आरम्भ करता है। वह जहां-जहां ठहरता है वहां समृद्धि और आपत्ति का संदेश छोड़ जाता है। वह सर्दी के बाद तेजी से नीचे उतरता है। उसके ठहरने के स्थान निश्चित होते हैं जहां पंगवाल जन पूजन सामग्री रख आते हैं।

पंगवाल लोगों का विश्वास है कि राक्षस अमर होते हैं और वे समय पड़ने पर अपना रूप और रंग बदल लेते हैं इसीलिए वे समझते हैं कि सदियों पहले राणा मल्हा द्वारा कैद किया राक्षस युगल अब तक जीवित है इसीलिए वे फुलयात्रा के आरम्भ होने पर शुभ राग न बजाकर अशुभ राग (ढढ) बजाते हैं। पंगवालजनों का लोकविश्वास है कि राक्षस आगे से पीछे की ओर नृत्य नहीं कर सकते इसीलिए सेन नृत्य की शैली आगे से पीछे की ओर कदम ले जाने की है।

इस प्रकार राक्षस का भय नहीं रहता। एक अन्य लोकविश्वास भी प्रचलित है कि शोर-शराबा करने से राक्षस भाग जाते हैं। इसीलिए जुकारू को साच क्षेत्र के लोग यात्रा की समाप्ति पर चेलों द्वारा फूल और टहनियां लेकर शोर-शराबा करते हुए चलते हैं। चज़गी के दिन भी इसी प्रकार का शोर इसी विश्वास का द्योतक है। लोकविश्वास को मानते हुए चजगी के दिन पंगवाल युवक अखरोट की टहनी पर मशालें फेंकते हैं। जिसकी मशाल अखरोट पर टिक जाय तो समझा जाता है कि उसके घर लड़का होगा। लोकविश्वास के आधार पर पांगी-साच के लोग सामल त्यौहार की रात को बाहर नहीं जाते। वे समझते हैं कि ऐसा करने से सामल नानी (डायन) उन्हें खा जायेगी इसीलिए वे उस दिन शाम को दरवाजे-खिड़कियों पर कांटे लगाते हैं।

पंगवाल लोग, विशेष कर किलाड़ क्षेत्र के लोग टुंडा राक्षस से अब

भी डरते हैं। वे उसे भगाने के लिए उसकी ओर धुनप-बाण ताने राम और टुंडा राक्षस के चित्र बनाते हैं। ऐसा शिवरात्रि से तीन दिन पहले किया जाता है। दूसरे दिन दरवाजे और खिड़कियों पर कांटे लगाये जाते हैं और स्थान-स्थान पर चकमक पत्थर (सुकराह) रखे जाते हैं। जिन्हें देखकर टुंडा राक्षस या अन्य राक्षस भाग जाते हैं। शिवरात्रि को लोग (रात्रि के समय) घर से बाहर नहीं निकलते।

पंगवाल जनजातीय लोग 'कहुओं' (चेला) पर अधिक विश्वास करते हैं। शिवरात्रि को हर घर में चेला कांपता है। वह देवता और राक्षस के युद्ध की खबर लाने के लिए समाधिस्थ (In a trance) सा हो जाता है। फिर संदेश देता है कि राक्षस जीते हैं या देवता। यदि देवता जीते हों तो सुख-समृद्धि का वर्ष आता है। यदि राक्षस जीते हों तो आपत्ति आती है।

लोकविश्वास है कि सुन्नु और गर्भ दो कहुं (जादूगर) भाई थे जो हुण्डान निवासी थे और मन्त्र के बल पर उड़ते थे। उन्होंने टुंडा राक्षस को आमंत्रित किया। लोकविश्वास है कि शूण और रई गांव के बीच विचवासनी भगवती रहती है वहां यदि किसी को पानी की धारा बहती नजर आ जाये तो उस व्यक्ति की छः मास के भीतर मृत्यु हो जाती है।

पंगवाल-जनों का विश्वास अन्य पर्वतीय लोगों की तरह जादू-टोने में बना हुआ है। उनके अनुसार इस समाज में बहुत-से डागी और डायनें हैं जिन्हें कहुं की सहायता से भगाया जा सकता है। वह जो उपाय दर्शाते हैं उसी के अनुसार जादू-टोना को भगाया जा सकता है। कभी-कभी देवता भी जादू-टोना भगाने में सहायक होते हैं। जादूगर भूत भगाने के लिए तन्त्र-मन्त्र और जन्त्र बांधकर रक्षा करता है। अब स्थान-स्थान पर आधुनिक चिकित्सा सुविधाएं प्राप्त हो गई हैं परन्तु फिर भी लोग जादू-टोने पर विश्वास करते हैं।

जादू-टोना

भारत की सभी जनजातियों में अनोखी प्रथाएं हैं। जादू-टोना की प्रथा और विश्वास जनजातियों में व्यापक तौर से हर कदम पर प्रचलित है। वे किसी भी रोग को सर्वप्रथम जादू-टोने से सम्बद्ध करते हैं। उनके सन्दर्भ में रोग दो प्रकार से लगते हैं या रोगों के दो कारण हैं एक 'शरीरिक' और दूसरा 'ओपरा'। यहां ओपरे का अर्थ हुआ जादू-टोना। जादू-टोने से उत्पन्न बीमारी (ओपरा) का उपचार जादू-टोने से ही हो सकता है जबकि शरीरिक रोग का उपचार वैद्य या डॉक्टर की दवाई से होता है।

जादू-टोने का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। जादू-टोना सीधा मंत्र द्वारा भी किया जा सकता है जिससे व्यक्ति तत्काल प्रभावित होता है। जादू-टोना खाने के माध्यम से भी किया जाता है जिसे 'खाधा' की संज्ञा दी जाती है। ऐसे जादू-टोने के माध्यम से प्रभावित व्यक्ति धीरे-धीरे रोगग्रस्त होता है और इस 'खाधा' (स्लो पोइजनिंग) से वह किसी समय भी अपने शरीर से हाथ धो सकता है। जादू-टोना पशु-पक्षियों के और भूत-प्रेत के माध्यम से भी किया जाता है। इन सब विधियों और उसके उपचार पर निम्नलिखित विवरण उपस्थित है।

जादूगढ़ना

जादू गढ़ने का अर्थ जादू दफनाने से है। ऐसे कार्य को स्थानीय भाषा में 'जादू दबणा या जादू करना' से जाना जाता है। शत्रुता या व्यक्तिगत वैमनस्य या किसी की वंशवृद्धि को रोकने के लिए या किसी के परिवार को नष्ट करने के लिए शत्रु किसी जादूगर (डागी) की सहायता लेकर चुपके से अपने शत्रु के घर या आंगन में जादू दफना आते हैं। यह कार्य बड़ी चतुराई से किया जाता है। जब नए मकान का निर्माण लगा होता है उस समय जादूगर अपना कार्य चतुराई से कर लेते हैं। जादू प्रायः प्रवेश द्वार के नीचे या आम रास्ते में जहां से परिवार हर समय गुज़रता है दफनाया जाता है। आम रास्ता आंगन भी हो सकता है। जादू घर की दीवार में भी गाड़ा जाता है। चूल्हे के नीचे भी जादू गाड़ने का उचित

स्थान समझा जाता है। पशुशाला भी ऐसे कृत्य के लिए उचित स्थान होता है।

जादू के रूप में दफनाये गए पदार्थों में सरसों, सिन्दूर, श्मशान से लाई मिट्टी, कोयला और राख इत्यादि आम प्रयोग में लाई जाती है। अन्य गुप्त सामग्री भी प्रयोग में लाई जाती है। जादूगर कई प्रकार की विधियों का उपयोग ऐसे जादू को तैयार करने में करता है। वह कई प्रकार के मन्त्र उच्चारण से उसे तैयार करता है। फिर विशेष समय इसे दफनाता है। यह केवल अंध विश्वास-मात्र भी हो सकता है परन्तु इस प्रकार की प्रथा जनजातीय जादूगरों में पाई जाती है।

लोगों के परम्परागत विश्वास के आधार पर जादू-टोने से प्रभावित घर में किसी प्रकार की शांति नहीं रहती। परिवार के सदस्यों में सदा झगड़ा रहता है। कलह और अशांति का वातावरण बना रहता है। माल-मवेशी भी अस्वस्थ रहते हैं, घर में कितना भी कमाएं धन-धान्य में कमी ही रहती है। सन्तान के लिए सुख-समृद्धि का अभाव रहता है। सुख के दर्शन कम ही होते हैं, हर समय दुःख का मुंह ताकना पड़ता है।

उपचार

ऐसा विश्वास है कि जादू-टोने को जादू-टोने द्वारा ही दूर किया जा सकता है। ऐसी दशा में घर के लोग किसी जानकार जादूगर के पास जाते हैं और घर में जादू दफनाये होने का सन्देह प्रकट करते हैं। वह कैसे पता लगायें कि जादू किस जगह गाड़ा गया है। अतः वह भी कोई जादूई ढंग अपनाता है। वह घर वालों से 'माणी' नामक अन्न मापक बर्तन मांगता है। गह मापक 'माणी' लकड़ी का बना होता है। वह उसमें तांबे का एक विशेष सिक्का (पुराना पैसा) डालता है जिस पर हनुमान की मूर्ति खुदी रहती है। अब वह किसी व्यक्ति को 'माणी' को दोनों हाथ से जोर से पकड़ने के लिए कहता है और फिर मन्त्र का उच्चारण करते समय। इस पर सरसों के बीज फेंकता है। अब वह माणी हरकत में आती है और तीव्र गति से चलने लगती है। वह व्यक्ति जिसने उसे पकड़ा होता है पीछे से घिसटता जाता है। माणी जादू की खोज में इधर-उधर गतिमान रहती है। अंततः वह उस स्थान पर ठहर जाती है जहां जादू दफनाया होता है। अब उस स्थान को उखाड़ा जाता है अतः जादू वहां मिल जाता है। कोयला,

राख, सरसों, लाल कपड़ा, हड्डियां, सिन्दूर इत्यादि कई प्रकार की सामग्री देखने को मिलती है। लोक विश्वास है कि जादू उखाड़ देने के बाद घर में शांति और समृद्धि छा जाती है। इस प्रकार की खोज प्रक्रिया को 'खोरी छड़णा' कहा जाता है।

'खोरी' चोरी का माल बरामद करने के लिए भी प्रयोग में लाई जाती है। यह खोज के लिए जादू की पुरातन प्रक्रिया है जो आज भी जनजातीय लोगों में प्रचलित है।

माल-मवेशी को जादू-टोना करना

यदि किसी के पशु अच्छे हों तो कई व्यक्ति हसद के मारे पशुधन को जादू कर देते हैं। वे कई प्रकार की प्रक्रिया अपनाते हैं। गद्दी लोगों का विश्वास है कि कई जादूगर (डागी) कभी बाघ को मन्त्र द्वारा आमंत्रित कर किसी के रेवड़ में भेज देते हैं। इस प्रकार की जादूगरी को 'ब्राघ लाणा' कहा जाता है। इस प्रकार भेजा हुआ बाघ (ब्राघ) भेड़-बकरियों का बहुत नुकसान करता है। यहां तक कि 15/20 पशु एकदम काट डालता है। लोक विश्वास है कि इस प्रकार का बाघ यदि प्रतिक्रिया में जादू के बल से उस जादूगर के पास वापस भेजा जाये तो वह उसे जान से समाप्त कर सकता है।

कभी-कभी गद्दियों के भेड़-बकरियों के रेवड़ को भ्रभु (भूरा भालू) भी काफी हानि पहुंचाता है। वे उसे भी जादू के बल से भेजा समझ बैठते हैं।

इस प्रकार की प्रक्रिया के लिए डागी या डायन को विधिवत् जाप करना पड़ता है। आमंत्रित-पशु उसी समय प्रेरित कर हानि पहुंचाने के लिए भेज दिया जाता है। ऐसा जनजातीय लोगों का विश्वास है।

कभी-कभी गाय-भैंस अपेक्षित मात्रा से कम दूध देने लगती है। उस समय कई लोग कहते हैं—"हमारी गाय-भैंस को चुंघु लगा दिया है"—इसका अर्थ है कि किसी डायन या डागी ने जादू के बल से 'चुंघु' नामक हानि पहुंचाने वाली दुरात्मा भेज दी है। यह दूध पी जाती है। चुंघु हानि पहुंचाने वाला छोटा-सा प्राणी है, जिसकी श्वेत और लम्बी दाढ़ी होती है। लम्बी नोकदार टोपी होती है।

वह गाय-भैंस का दूध उनके स्तन से चिपट कर पी जाता है। वह

डागी और डायन का विशेष सहायक माना जाता है। जब कभी गाय या बैल अधिक मस्ती दिखाए या उद्दंड हो जाये तो समझा जाता है कि किसी डागी या डायन ने 'वणास्थ' नामक देवी जाप द्वारा प्रेरित कर उनमें उद्दंडता फैलाने के लिए भेज दी है। वणास्थ जप कर माल-मवेशी के पीछे लगाने से पशु असाधारण व्यवहार करने लगते हैं। वणास्थ औरत के पीछे भी लगाई मानी जाती है। ऐसी दशा में औरत पागल का-सा व्यवहार करने लगती है। गाय-भैंस का लात मारना, दूध न देना, दूध की जगह खून देना—ये सब क्रियाएं जादू-टोने के फलस्वरूप ही मानी जाती हैं।

उपचार

इस प्रकार के रोगों का उपचार जादूगर ही करते हैं जिन्हें 'सौंरी या चेले' की संज्ञा दी जाती है। वह प्रथम इस प्रकार के व्यवहार के कारण का पता लगाता है। वह कुछ माश के दाने हाथ में लेकर धीरे-धीरे फूंक देकर मन्त्र बोलता है फिर उन सभी दानों की अलग-अलग ढेरी लगाता है। फिर अलग-अलग ढेरियों में एक ढेरी मालिक को उठाने के लिए कहता है। यही प्रक्रिया वह कई बार अपनाता है। फिर वह कहता है कि—फलां देवते का खोट है अर्थात् फलां देवता आप पर नाराज़ है उसे मनाना पड़ेगा या किसी द्वारा जादू किया गया है या कोई स्वाभाविक रोग है इत्यादि। इस प्रकार पता लगाने की प्रक्रिया को 'कण हेरना' से जाना जाता है। दूसरे शब्दों में इसे 'प्रश्न लाणा' भी कहा जाता है।

चेले या सौंरी द्वारा उपचार की विधि

यदि पशु के दूध में कभी खून की धार दिखाई दे तो दूध में खून देने के लिए एक प्रकार की धूनी दी जाती है। धूनी में कई प्रकार की जड़ी-बूटियां डाली जाती हैं। यह प्रक्रिया गुप्त रखी जाती है। जब दूध फट जाए तो भी धूनी देकर उपचार किया जाता है। कभी-कभी जड़ी-बूटियां खाने को भी दी जाती हैं परन्तु अधिक ध्यान धूनी देने की ओर दिया जाता है। पागल हुई महिला और पशुओं को भी धूनी दी जाती है। पागल महिला की झाड़-फूंक भी की जाती है। एक कांटेदार झाड़ी **करंगोरे** की टहनी को उस पर झुला-झुला कर मन्त्र उच्चारित किया जाता है। फिर राख लेकर उसे फूंका जाता है और उसके माथे पर भी लगाया जाता है।

यदि महिला फिर भी ठीक नहीं होती तो प्रेत आत्मा को प्रसन्न रखने के लिए बांस के एक बर्तन में जिसे छड़ कहते हैं भिन्न-भिन्न प्रकार की खाद्य सामग्री एकत्रित की जाती है। सामग्री में प्रेत आत्मा के लिए आटे का पेड़ा, शराब, रोट और अन्य सामग्री भी डाली जाती है। बीमार मनुष्य का पुतला भी बनाया जाता है। इस सारी सामग्री को रास्ते के समीपी चौक के ऊपर रख दिया जाता है ताकि दुरात्मा उस बीमार व्यक्ति का पीछा न करे। इस प्रकार की प्रक्रिया को **छाड़छड़ना** से जाना जाता है।

महिला या पुरुष का इस विधि से उपचार करने से उसके अच्छा होने की आशा की जाती है। कभी-कभी मरीज ठीक भी हो जाता है इसके अतिरिक्त मंगल या रविवार को एक विशेष विधि से बन्दूक दागने की भी प्रथा है। इस प्रकार की प्रक्रिया को **बाण छड़ना** कहा जाता है। ऐसा करने से विश्वास किया जाता है कि दुरात्माएं भाग जाती हैं और घर में शांति और समृद्धि छा जाती है। किसी विशेष दिन को घर के चारों ओर दूध की धारा छोड़ने की भी प्रथा है।

मुट्ठ छड़णा

जब कोई व्यक्ति अन्य व्यक्ति से किसी कारण शत्रुता और द्वेष रखता हो और उसे किसी प्रकार जान से मारना चाहता हो तो जादू-टोना शास्त्र में एक विधि मुट्ठ छोड़ने की भी है। लोक विश्वास के अनुसार मुट्ठ उस समय छोड़ी जाती है जब अपेक्षित व्यक्ति वृक्ष पर चढ़ा हो, घर की छत पर हो या खुले में नंगा नहा रहा हो या किसी ऊंचे स्थान पर हो ताकि मुट्ठ उस पर प्रत्यक्ष पहुंच सके। मुट्ठ न ही तो बन्दूक का तीर है और न तलवार का वार है परन्तु मन्त्र द्वारा भेजी एक गुप्त शक्ति है। मुट्ठ छोड़ने वाला जादूगर दूर बैठकर उस पर मन्त्र फूंक देता है। मुट्ठ का शिकार उसके प्रभाव से या तो नीचे गिरकर लोट-पोट हो जाता है या असह्य पीड़ा पुकार कर दम तोड़ देता है।

उपचार

लोक धारणा है कि मुट्ठ से प्रभावित व्यक्ति बचता नहीं। हां, यदि एकदम कोई जादूगर मिल जाये तो वह मुट्ठ को वापस भी भेज सकता है जिससे मुट्ठ छोड़ने वाला व्यक्ति प्रभावित हो सकता है।

खाधा

खाधा एक प्रकार का स्लो पॉइजनिंग (Slow Poisoning) है जो अनजाने और धोखे में किसी व्यक्ति को दिया जाता है यह स्लो पॉइजनिंग कोई आजकल का वैज्ञानिक ज़हर नहीं है। डागी या डायन के पास ऐसे नुस्खे होते हैं जिसके आधार पर तैयार किया खाधा खाने वाले व्यक्ति को धीरे-धीरे समाप्त कर देता है। इससे प्रभावित व्यक्ति का स्वास्थ्य धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। कई दवाइयां खाने पर भी यह मरज़ काबू में नहीं आता। वह चेले या 'चेली' या 'सौरीं की खोज में निकलता है चेला या चेली भी अब उसका शरीर सूंघ कर कांपने लगते हैं फिर उस पर आप बीती की झड़ी लगा देते हैं। उस पर कई प्रकार के प्रश्न किये जाते हैं कि यह 'खाधा किसने और कैसे खिलाया है। कैसे तैयार किया है। किस खाद्य-पदार्थ के साथ दिया है और कौन-कौन व्यक्ति उसमें सहायक थे इत्यादि विषय पर गहराई से विचार होता है।

उपचार

फिर उपचार चलता है। वही धूनी और जड़ी बूटियां, दैनिक जीवन में संयम और किसी देवता की आराधना। खान-पान में परहेज़ और नित-नियम, साथ-साथ झाड़-फूंक भी चलता है। यदि इतना करने पर सब ठीक हो गया तो लाखों पाये अन्यथा इसके अन्य उपचार इस प्रकार हैं—

खाधा खेलना

जो-जो वस्तुएं उसे खाने में खिलाई गई हैं उनका वर्णन उस मरीज़ की ज़बान से कहलाना आवश्यक समझा जाता है ताकि उस पर मनोवैज्ञानिक असर पड़े। ऐसा कहलाने को 'खाधा खेलनां कहा जाता है। खाधा-खेलने में इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि वह मरीज़ यह भी बताए कि खाधा किसने दिया है और कब दिया है। ऐसा विश्वास है कि यह सब कुछ बताने वाला व्यक्ति तत्पश्चात् स्वस्थ हो जाता है।

ऐसा इलाज़ करने के लिए एक विशेष प्रक्रिया अपनाई जाती है, इस विशेष प्रक्रिया को 'नल्ली' बैठना कहा जाता है। 'नल्लीं एक विशेष 'सौरी' जो स्वयं भी जादूगर होता है, के अधीन आयोजित की जाती है। एक ओवरी (घर का बड़ा कमरा) में एक या अधिक मरीज़ सामूहिक तौर पर उपचार के लिए बिठाए जाते हैं। सौरी अपने हाथ में मोर के पंख का

एक गुच्छा जिसे स्थानीय भाषा में 'मुट्ठा' कहा जाता है उन मरीज़ों पर बार-बार झुलाता रहता है और मन्त्र उच्चारित करता रहता है। मरीजों को अलग-अलग बिठाकर उन्हें दुपट्टे या चद्दर से ढांप दिया जाता है अब सौंरी लोकगीतों के स्वर में मन्त्र बोलना आरम्भ करता है।

वाद्य यन्त्री ढोल पर विशेष राग अलापता है ताकि मन्त्र की ध्वनि और ढोल का राग आपस में लयबद्ध हो जाएं। सौंरी साथ ही साथ 'मुट्ठा' भी उन पर धीरे-धीरे झुलाता जाता है। मरीज़ गान और ढोल की ताल में झूमने लगते हैं। अब सौंरी उनपर बार-बार प्रश्न की झड़ी लगाता है—हां बोलो क्या देखा? अब कहां हो? क्या दीखता है? कौन खड़ा है? हाथ में क्या है?

बहुत-से व्यक्ति भी उपस्थित रहते हैं जो इस व्यवस्था में सौंरी की सहायता करते हैं। सौंरी जड़ी-बूटियों के लोकगीत बार-बार गाता रहता है। अब फिर मरीज़ों पर कई प्रश्न किये जाते हैं ताकि वे 'खाधा' खेल सकें। कभी-कभी मरीज़ लय और ताल में इतने मस्त हो जाते हैं कि प्रश्नों के उत्तर तुरन्त देते जाते हैं। कभी-कभी उनको उल्टी करने के लिए भी प्रेरित किया जाता है तथा बाहर आये मल में उन द्वारा खाई खाद्य सामग्री को भी खोजा जाता है। कभी-कभी बाहर आई वस्तुओं पर चर्चा भी होती है। जैसे कि पहले लिखा जा चुका है कि यदि मरीज़ द्वारा खाई वस्तुओं का विवरण, समय और वह व्यक्ति जिसने यह 'खाधा' दिया है बता दिया जाता है तो 'खाधा खेला' मान लिया जाता है। उसे कुछ नियमों का पालन करने के लिए निर्देश दिये जाते हैं।

अन्य उपचार

अन्य उपचारों में एक काला मेढ़ा भेडू मंगाया जाता है। उसे सिर पर पांच, सात या कई बार घुमाया जाता है। उसे पानी पिलाया जाता है और उसके ऊपर पानी डाला जाता है। इस प्रकार उसे रक्षक मानकर 'पाणोध' नाम दिया जाता है उसे न ही बेचा जाता है न ही उस व्यक्ति द्वारा 'पाणोध' का मांस खाया जाता है।

कभी-कभी दुर्घटना होने पर दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति के सिर के ऊपर से चारों ओर रोटी तोड़कर फेंकने की प्रथा है ताकि दुर्घटना का दुष्प्रभाव एकदम टल जाए।

नज़र लगना

यह विश्वास किया जाता है कि अच्छी और सुन्दर वस्तु को लोगों की नज़र लग जाती है अतः उस पर परहेज के तौर पर कालिख का बिन्दु लगा लिया जाता है।

दूध में कोयला डाल दिया जाता है।

जादू-टोने के निवारण के लिए सार्वजनिक मेले

'खाधा खिलानें और अन्य जादू-टोने के निवारण के लिए कई स्थानों पर सार्वजनिक मेले भी आयोजित किये जाते हैं।

ये मेले लखदाता के मन्दिरों, गुग्गा की मढ़ियों और सीटु देवता के मन्दिरों में निश्चित तिथि को—होली और बैशाखी के दिन आयोजित किये जाते हैं।

मेले में 'खाधा-खेलने' या 'डाली बैठनें के इच्छुक व्यक्तियों को सामूहिक तौर पर पंक्तिबद्ध बिठाया जाता है। वाद्य यन्त्री ढोल और शहनाई पर लोकगीत की तर्ज़ पर 'नल्ली और डालीं के समय गाये जाने वाले गीत की ध्वनि अलापते हैं। शेष कार्यक्रम 'नल्लीं के आयोजन की तरह ही होता है।

अन्तर केवल यह है कि मेले के आयोजन में खाधा खेलने वाले मरीज़ को केवल तीन-चार घंटे का समय ही मिलता है। इस थोड़े से समय में बिरला ही खाधा खेल सकता है जब कि नल्ली के आयोजन में लगातार तीन-चार दिन का समय मिल जाता है, अतः 'खाधा खेलनें की सम्भावना अधिक रहती है।

लेकिन जादू-टोने के विशेषज्ञों का विश्वास है कि ऐसे समय जादू से प्रभावित व्यक्ति पर तीन-चार घंटे में ही काफी प्रभाव पड़ता है और खाधा या जादू का प्रभाव कम हो जाता है और कभी जादू और खाधे का असर निष्क्रिय भी हो जाता है। अतः ऐसे मौके पर ऐसे व्यक्तियों की बाढ़-सी लग जाती है।

निस्संतान औरतें और जादू-टोना

कई निस्संतान औरतें संतान उत्पन्न करने की इच्छा से जादू-टोने का सहारा लेती हैं और संतान प्राप्त करने की आशा रखती हैं। ऐसी महिलाओं को भी 'नल्लीं और 'डालीं बिठाकर उपचार किया जाता है।

उपसंहार

आज के वैज्ञानिक युग में जब कि उपचार की कई नई से नई विधियां आविष्कृत हुई हैं, जादू-टोने में विश्वास करने वाले लोगों की संख्या कम नहीं हुई है।

जनजातीय क्षेत्रों में इलाज की नई-नई विधियां पहुंची हैं, अस्पताल व डिस्पेंसरियां खुली हैं, डॉक्टर उपलब्ध हुए हैं. दाई और नर्सें कार्यरत हैं परन्तु जादू-टोने के उपचार उसी तरह चले हैं। कहीं-कहीं पढ़े-लिखे लोग भी इस जाल में फंसे दीखते हैं। शायद जनजातीय लोग घर के आस-पास ही उपचार कराना श्रेयस्कर समझते हैं या अपनी परम्परा को छोड़ने में असमर्थ हैं।

लोक कलाएं

पांगी में लोककला के असंख्य उदाहरण देखे जा सकते हैं। विशेषकर पुराने भवनों में लकड़ी की नक्काशी का काम अनूठा है। पुराने भवनों और मन्दिरों में इस प्रकार के नमूने देखने को मिलते हैं परन्तु अत्यंत आश्चर्य की बात है कि पांगी में पुराने मन्दिर तो हैं परन्तु पुरानी काष्ठकला की चित्रकारी उपलब्ध नहीं है। इसका कारण स्पष्ट है कि पांगी में हर पांच वर्ष के बाद मन्दिर का बाह्य ढांचा बदला जाता है। क्योंकि पांगी में अत्यन्त बर्फबारी होती है अतः मन्दिर के बाहरी ढांचे पर सामने की ओर आधुनिक ढंग की चित्रकारी की जाती है। कहीं ज्यामितिक नमूने हैं तो कहीं साधारण-सी आकृतियां परन्तु वे भी लोककला के एक प्रकार के नमूने हैं। लुज में शीतला माता, सुराल में दैंत नाग और झरयूं नाग, किलाड़ में दैंत नाग का मन्दिर और मिंधला में मिंधला माता के मन्दिर पर एक ही प्रकार की आकृतियां और ज्यामितिक वृत्त, त्रिभुज तथा अर्धवृत्त की आकृतियां दी हैं। दो हाथ में कमलधारी आकृतियां भी आम पाई जाती हैं। इस प्रकार की आकृतियां लुज की पनघट शिला पर बनी हैं। इन आकृतियों की नकल पांगी की लोककला में आम मिलती हैं। भरमौर क्षेत्र के नाग मन्दिर में प्रायः सांप की आकृतियां ही मिलती हैं। चौखटों पर बेलबूटे के नमूने भी मिलते हैं। पांगी क्षेत्र के संलग्न क्षेत्र उदयपुर (लाहौल) में मृकुला भगवती का मन्दिर काष्ठ चित्रकला का अद्‌भुत नमूना है। यहां चौखटों, खिड़की के स्तंभों, अन्य मण्डप के स्तंभों, शीर्ष पर अद्‌भुत काष्ठकला का कार्य हुआ है।

मण्डप की अंदरूनी छत पर कई पौराणिक दृश्य चित्रित किये गये हैं। प्रयुक्त लकड़ी या कोई भी भाग काष्ठ की नक्काशी और चित्रकारी के बिना नहीं। यह मन्दिर बहुत ही पुराना है। उसी समय की यह चित्रकला है। आकृतियों के साथ-साथ पृष्ठभूमि में बेलबूटे और फूल-पत्तियां दी हैं। इस मन्दिर की बनावट इस प्रकार की हुई है कि अधिक से अधिक बर्फ भी इस मन्दिर का बाल बांका नहीं कर सकती है।

सुराल भुटोरी का गोंपा भी लोककला के लिए प्रसिद्ध है। यहां भी लकड़ी पर नक्काशी हुई है। गोंपे के मुख्य कक्ष में मध्य के बड़े बीम को सहारा देने वाले स्तम्भ शीर्ष पर खुदाई का अत्यन्त सुन्दर कार्य हुआ है।

गच की तीन आदमकद बौद्धमूर्तियां भी लोककला की झलक प्रस्तुत करती हैं। भित्तिचित्र भी अवलोकनीय हैं। छत पर की चित्रकारी भी आकर्षक ढंग की है। साच गांव से आठ-नौ मील के फासले पर साहली नामक स्थान पर मशहूर पनघट शिला के साथ ही एक पुराना भवन रणौतकालीन शिल्पकला का उत्कृष्ट नमूना है जिसके प्रवेश द्वार के चौखट (Door-Frame) पर दोनों ओर बेलबूटे और फूल-पत्ती की खुदाई मिलती है। प्रवेश द्वार के ऊपर जहां चम्बा के अन्य भागों में गणेश की मूर्ति उकेरी मिलती है वहां इस प्रवेश द्वार के ऊपर सिंहवाहिनी शक्ति की आकृति खोदी गई है। इसका यह अर्थ नहीं कि पांगी में गणेश के पूजन का प्रचलन नहीं। साहली में ही एक छोटे-से मन्दिर में गणेश की पत्थर से निर्मित मूर्ति है जो स्थानीय लोगों द्वारा बहुत पुरानी बताई जाती है। पनघट शिला पर विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियां भी उस समय की शिल्प कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

किलाड़ में कारदार की एक पुरानी कोठी बनी थी इसे उखाड़कर पंचायत भवन बनाया गया है। कोठी के प्रवेश द्वार की दीवार उसी तरह खड़ी रखी गई है। प्रवेश द्वार पर देवता की आकृतियां खुदी हैं तथा चौखट पर मोटे तौर पर बेलबूटे खोदे गये हैं। इस प्रकार के पुराने सरकारी और निजी भवन अब नष्ट प्रायः हैं। नए मकानों के दरवाजों के चौखटों और अलमारी के दरवाजों पर कहीं-कहीं आधुनिक ढंग के वर्गाकार, वृत्ताकार, आयाताकार और त्रिभुजाकार डिजायन खुदे मिलते हैं। काष्ठ के पुराने बर्तनों पर भी खुदाई का कार्य हुआ है।

देवी-देवता के मुखौटे

किलाड़ में जुकारु के बाद तीन दिन तक और फुलयात्रा (फुलजाच्च) के अन्त में, स्वांग खेल रचाया जाता है। इस स्वांग खेल के पात्र देवी-देवता तथा राक्षस के मुखौटे पहन कर नाचते हैं। यह मुखौटे लकड़ी से बनाये जाते हैं। दर्शक मुखौटे के रूप को देखकर ही प्रभावित हो जाता है। मुखौटे के देखने से ही दर्शक में वात्सल्य, प्रेम और रौद्र रस जैसे संचारी

भाव पैदा हो जाते हैं। इन मुखौटों को अलग-अलग प्रभाव देने के लिए बकरी के बालों, खड़िया मिट्टी, कालिख आदि उपकरणों और रंगों का प्रयोग किया जाता है।

उसे सफेदी देने के लिए मकोल या खड़िया मिट्टी को पीसकर या घोलकर प्रयोग में लाया जाता है। श्वेत दाढ़ी-मूंछ के लिए बकरी के श्वेत बालों का प्रयोग किया जा सकता है। बालों को माश के आटे की लेई से चिपकाया जाता है। स्थानीय सामग्री को आसानी से प्रयोग में लाया जा सकता है। यदि काली भवों का प्रभाव देना हो तो तवे की कालिख को तेल में मिलाकर प्रयोग में लाया जाता है। मुखौटे के दांत लकड़ी को खोदकर ही बनाये जाते हैं। लोक-कलाकार स्थानीय उपलब्ध सामग्री से ही मुखौटे को प्रभावशाली बना लेता है। इनका भंडारन देवी-देवता के भण्डार में किया जाता है ताकि इनका निर्माण बारम्बार न करना पड़े।

जोज़ी पर कढ़ाई

पंगवाल स्त्री सिर पर जोज़ी पहनती है इस जोज़ी पर कढ़ाई का कार्य किया होता है ताकि जोज़ी सुन्दर और आकर्षक लगे। इसकी पृष्ठभूमि पर रंग-बिरंगे फूल, बेलबूटे और पत्तियां हाथ से बनाई जाती हैं जो दर्शक के मन को मोह लेती हैं।

पूलें

पंगवाली पूल जौ या गेंहू की टहनी से बनाई जाती है। प्रथम तो इसकी आकृति ही लोककला का नमूना है। इसकी लम्बी और ऊपर को उठी नोक अत्यन्त आकर्षक लगती है तिस पर किया लाल रंग उस पर मानो सोने पर सुहागे का काम करता है। इसे हम कुटीर उद्योग की संज्ञा भी दे सकते हैं परन्तु पूलें पंगवाल लोग बिक्री के लिए तैयार नहीं करते अपितु वे ऐसी पूलें शौकिया बनाते हैं।

कम्बल तथा थोबियां

यद्यपि कम्बल और थोबियां बनाना उनका उद्योग-धन्धा है। परन्तु उसे कलात्मक ढंग से बनावट देना एक लोककला है। यदि आप किसी अज्ञात स्थान पर पांगी का कम्बल ओढ़कर जायें तो वहां की संस्कृति का जानकार व्यक्ति कहेगा कि यह पांगी की लोककला का नमूना है अतः इस रूप में हम कम्बल और थोबी (बकरी के बालों से तैयार एक

डिजाइनदार चटाई या दरी) को लोककला की श्रेणी में ले सकते हैं। कम्बल में कलात्मक शैली से रंग-बिरंगे डिजाइन भरे जाते हैं जो आकर्षक और सुन्दर लगते हैं तथा पंगवाल लोककला का अद्‌भुत नमूना पेश करते हैं। इन कम्बलों को देखने वालों की आंखें चौंधिया जाती हैं।

वे एक प्रकार की फर्शी चटाई तैयार करने में भी सिद्धहस्त हैं। इस गलीचेनुमा दरी को स्थानीय लोग थोबी कहते हैं। यह बकरी के बालों को कातकर उस में विभिन्न रंग भरकर बुनी जाती है। अलग-अलग पट्टियों को बुन कर उसे जोड़ लिया जाता है। इस प्रकार फरशी थोबी तैयार कर ली जाती है। यह काफी टिकाऊ और आकर्षक होती है अतः इसकी काफी मांग है। इसे तैयार करने के लिए सुरा गाय के बालों का भी प्रयोग किया जाता है।

रेखी और उगरी

ऐसी जनश्रुति है कि पांगी के हुण्डान गांव में टुंडा राक्षस का निवास स्थान था। वह शिवरात्रि के दो-तीन दिन पांगी में आतंक मचाता था। बहुत-से लोगों को खा जाता था। हुण्डान में रहने वाले कहुं (तांत्रिक) भाइयों ने पंगवालों को उसके आतंक से बचने के लिए एक विधि बताई। उन्होंने कहा कि शिवरात्रि से दो दिन पूर्व हर घर की छत (कोठा) पर तांत्रिक रेखाएं चारों कोनों में खीची जायें एक ओर राम का चित्र बनाया जाये तथा दूसरी ओर टुंडा राक्षस का चित्र खींचा जाये। राम के हाथ में धनुष-बाण दिया जाये। धनुष-बाण टुंडा राक्षस की ओर साधा होना चाहिए। तसवीर के नीचे देवदार का वृक्ष बनाया जाये। उसके नीचे वृत्त में सुकराह नामक श्वेत पत्थर रखे जायें। इस प्रकार के वृत्त स्थान-स्थान पर बनाये जायें और उन पर श्वेत सुकराह पत्थर के ढेर लगाये जायें। राम के चित्र के ऊपर हिन्दी में राम लिखा जाये। यह क्रम दूसरे दिन भी दोहराया जाये। पहले दिन को रेखी कहा जाता है और दूसरे दिन को उगरी कहा जाता है।

पंगवाल लोग अब तक इस लोककला को अपनाये हुए हैं। वे ऐसा करने पर शिवरात्रि को खिड़की और दरवाज़े पर कांटे लगाते हैं और रात को तीन दिन तक बाहर नहीं निकलते। 'रेखी और उगरी' की लोककला पांगी के हर घर में अपनाई जाती है।

सिल्ह के दिन बलराज का चित्र और पूजन

पंगवाल जन जुकारु (पड़ीद) से पूर्व शाम को सिल्ह का त्यौहार मनाते हैं। उस दिन सायं को हर घर में एक मण्डप बनाया जाता है जिसमें फूल चित्रित किया जाता है। एक ओर पूजन के लिए बलराज का चित्र खींचा जाता है उस पर धूप-दीप रखकर पूजन सामग्री रख दी जाती है। पूजन में सभी पकवान वहां पर रखे जाते हैं। स्थान-स्थान पर बलराज के चित्र खींचे जाते हैं। रात भर उसका ध्यान किया जाता है। किसी प्रकार का निरर्थक शोर नहीं किया जाता। ठक-ठक की ध्वनि नहीं की जाती। इस प्रकार की क्रिया से बलराज का सिर फटने की सम्भावना रहती है। प्रातः चार बजे उठकर नहा-धोकर बलराज के उपलक्ष्य में रखे प्रसाद को आपस में बांटकर आनन्द से खाया जाता है। अब बलराज के प्रसाद को अपने सगे-सम्बन्धियों में भी बांटा जाता है।

सामल की लिखावट

सामल का त्यौहार साच क्षेत्र में मनाया जाता है। इस दिन लोग अपने घर की खूब लिपाई करते हैं। इस दिन घर के बड़े कमरे में चारों कोनों पर त्रिशूल बनाये जाते हैं फिर सारे कमरे में मोटे तौर पर चौरस लिखावट की जाती है। रात को इस मण्डप के मध्य धूप-दीप तथा सत्तू का एक पेड़ा रखा जाता है।

इस सत्तू के पेड़े को टोट कहा लोग उस रात जल्दी धूप-दीप कर खाना खा लेते हैं। संध्या पड़ते एक जलती मशाल खिड़की से बाहर फेंक देते हैं तथा दरवाजे और खिड़की के ऊपर कांटे लगाकर जल्दी सो जाते हैं। रात को बाहर निकलना वर्जित होता है।

अग्यार

अग्यारी का मण्डप हवन करने के लिए बनाया जाता है। इसके ऊपर आग जलाकर भरेस (Buck-Wheat) के दाने इसमें आहुति के रूप में डाले जाते हैं। घी की आहुतियां भी प्रायः दी जाती हैं। पंगवाल लोग इसको अग्यारी कहते हैं।

इन्हें लिखने का भी विशेष ढंग अपनाया जाता है। सफेद रंग का पत्थर इकट्ठा कर कूटा जाता है। जब वह पीसकर बारीक हो जाता है तो उसे आटे की तरह प्रयोग कर लकीरें डाली जाती हैं।

मनों मण्डप

इस मण्डप को हवन के दिन लिखा जाता है। इसके मध्य में एक विशेष पात्र में जलते कोयले रखकर उसमें धूप डाली जाती है। इसके साथ ही एक दीपक भी जलाया जाता है। पंगवाली भाषा में इसको मनों कहा जाता है।

पुनाह मण्डप

जब वर और वधू विवाह के बाद अपने घर आते हैं तो घर में पुनाह संस्कार की रस्म अदा करनी पड़ती है। वर और वधू इस पुनाह मण्डप के सात फेरे लगाते हैं। यह मण्डप भी लोक कला का एक अत्युत्तम उदाहरण है।

लोककला के विवरण से स्पष्ट होता है कि पंगवाल अपने धार्मिक त्यौहार विधिपूर्वक मनाते हैं। वे अपने कर्म और धर्म के प्रति जागरूक हैं। उन्होंने अपनी परम्परागत लोककला को धर्म और कर्म के माध्यम से जीवित रखा है।

❑

अष्टम अध्याय

ताम्रपत्र और शिलालेख

राजा पृथ्वी सिंह का मिंधला ताम्रपत्र

चम्बा के इतिहास में वर्णन मिलता है कि राजा जनार्दन (राज्य काल-1613 ई॰ से) को नूरपुर के राजा जगत सिंह ने धोखे से संधि के समय मिलनी करते हुए कटार घोंप कर मार दिया था। नवशिशु-राजकुमार पृथ्वी सिंह को राजा मण्डी के यहां बटलो नामक दाई ने किसी तरह बचा कर भेज दिया था। जब पृथ्वी सिंह बड़ा हुआ तो राजा मण्डी की सहायता से वह कुल्लू होकर अपना राज्य प्राप्त करने के लिए चम्बा आया। कुल्लू से आते हुए राजा पृथ्वी सिंह ने पांगी का भ्रमण किया। पांगी पहुंच कर उन्होंने मिंधला माता के दर्शन किये और श्रद्धा के फूल चढ़ाये। भगवती के लिए भूमिदान (शासन) दिया जिसके लिए एक ताम्रपत्र जारी किया। ताम्र पत्र की भाषा संस्कृत मिश्रित चम्बयाली है। उस समय पांगी की बजारत दुयोड़ बाजो के अधीन थी। दुयोड़ बाजो बटलो दाई के पुत्र थे। ताम्रपत्र की तिथि विक्रमी सम्वत् 1698 तदनुसार अप्रैल 1641 ई॰ है।

"ग्राम इक मिंधला सीमाय प्रजेसमेत श्री चमुण्डा की श्री महाराजे पृथ्वी सिंह कुलेरे चामुण्डाये दे वैशाख प्र॰ 21 आई पूजा संकल्प करी दित्ता। ए श्री राजे दा धर्म श्री राजे तथा राजे दे पुत्रे पोत्रे अग्गे पालणा। मिंधले दे प्रजा कने बंधेज शाख जी पाले। इदुधर अ इ दे आ। घे घोर दा होट देणा। दयोड़े बाजो दी बजीरी मंझ शासण दित्ता।

लिखितम् पंडित लक्ष्मी कांतेन।

ताम्र पत्र का अर्थ

ग्रांम मिंधला की सीमा में राजा पृथ्वी सिंह कुल (राजा पृथ्वी सिंह और उसके वंशजों ने) चामुण्डा (भगवती) के लिए वैशाख प्रविष्टे 21 को

(चामुण्डा भगवती के हां आ कर और पूजा अर्चना के बाद) (भूमिदान) का संकल्प कर दिया। वह राजा (पृथ्वी सिंह) के धर्म की पालना राजा के पुत्र-पौत्रों (उत्तराधिकारी) वंशजों को करनी है। इस भूमिदान की पालना मिंधला की प्रजा और प्रबन्धकों को करनी होगी। शासन (भूमिदान) में "घे घोर दा होट" नामक स्थान देना है। वह शासन (भूमिदान) बजीर "दयोड़" बाजो की बजीरी के अन्तर्गत दिया गया है।

पंडित लक्ष्मीकांत द्वारा लिख गया।

नोट--दूयोड़=धात्री का पुत्र

राज-प्रण के अनुसार राजपुत्र (राजा की संतान) के लिए अलग से दाई (धात्री) नियुक्त की जाती थी जो राज कुमार को अपना दूध पिलाती थी। वह अपनी सन्तान को भी एक साथ अपना ही दूध पिलाती थी ऐसी "धात्री" के पुत्र को "दूयोड़" कहा जाता था। राजा पृथ्वी सिंह की धात्री "बटलो" नामक महिला थी जो चम्बा में बटलो दाई से प्रसिद्ध हुई है। उसके अपने दो पुत्र थे बाजो ओर आजो। बाजो और पृथ्वी सिंह ने एक ही मां का दूध पिया था अतः बाजो को दूयोड़ बाजो कहा जाता है।

लुज का पनघट शिलालेख

पांगी के परगना धरवास में लुज नामक एक गांव है जिस के नीचे लगभग डेढ़-दो कि॰ मी॰ के फासले पर बारहवीं शताब्दी के आरम्भ का एक पुराना शिला लेख है जो ऐतिहासिक महत्व का है। इस शिलालेख को देखने के लिए लेखक वहां के प्रधान श्री सूरतदास के साथ गया, उस शिलालेख के पास जाने के लिए कोई मार्ग नहीं। झाड़ी के मध्य से होकर कठिनाई से वहां पहुंचे। कहा जाता है कि यह शिला एक पानी के पनिहार पर थी। साथ ही एक बहुत बड़ा गांव था। अब वह गांव वहां से उजड़ कर लुज में आ गया। थोड़ी दूरी पर एक घर है और शायद वह भी अकेला होने के कारण निर्जन है। पनिहार अब सूख चुका है। वहां पनिहार होने का नामो-निशान भी नहीं, केवल यह शिलालेख है। आधी से ज़्यादा शिला ज़मीन में धंस चुकी है। यह बाएं खेत के एक कोने पर सिमट कर तिरस्कृत दशा में खड़ी है। एक ओर खेत और दूसरी ओर झाड़ियों का एक भूखण्ड नज़र आता है। यह शिला अपने वैभव के दिन याद करती

दुर्दशा में अपने क्षण गिन रही है। वे भी दिन थे जब सामन्त-युग में सारे गांव की नारियां पानी से घड़े भर-भर कर अपने सिर पर लिए साथ के गांव को ले जाती थीं। इस पनघट शिला पर चहल-पहल लगी रहती। आज भूला-भटका भी यहां कोई दिखाई नहीं देता।

शिला का कुछ ही भाग अब दृष्टिगत है। शिला के दोनों किनारों पर आस-पास बेल-बूटे के मध्य दो खोदी देव-आकृतियां बैठी अवस्था में दिखाई देती हैं। दायीं ओर की मूर्ति गणेश की है। यह चतुर्भुज है। इसके दो दाहिने हाथों में कुलहाड़ा और शंख है और बायें हाथों में चक्र और वज्र है। बायीं ओर की मूर्ति वरुण की है जिसके दो हाथ हैं। एक में गदा और दूसरे में माला है। मूर्तियों के मध्य एक कमल चक्र है तथा चारों ओर बेल-बूटे खुदे हैं। चक्र के नीचे लगभग 14 इन्च की लम्बाई में साढ़े पांच पंक्तियों का एक शिलालेख वर्तमान है जो लगभग खराब हो चुका है परन्तु जब इस शताब्दी के आरम्भ में इसका अध्ययन हो रहा था उस समय यह अच्छी दशा में बताया गया है। छोटी-छोटी तीन पंक्तियों का एक अन्य लेख उस समय भी इतनी खराब दशा में था कि उसे पढ़ा ही नहीं गया अतः उसका वर्णन कहीं नहीं मिलता।

इस शिलालेख के पढ़ने से चम्बा के राजा जष्ट वर्मन् (राज्य काल 1105-1118 ई॰) के काल की शुद्ध गणना मिलती है। इस शिलालेख में उनके सिंहासनारूढ़ होने का समय शास्त्र संवत् 81 बताया है। जिसके अनुसार राजा जष्ट वर्मन् सन 1105 ई॰ को राज गद्दी पर बैठे। इससे पूर्व सभी राजाओं की काल गणना अनुमान पर आधारित है। प्रत्येक राजा की शासन अवधि बीस वर्ष ली है इसके बाद शासनावधि शुद्ध रूप से चली। एंटिक्वीटीज ऑफ चम्बा के सौजन्य से इस शिलालेख का अनुवाद इस प्रकार है।

ओं स्वस्ति। सं 81। श्री महाराज जयसठ प्रथम वर्ष थापित। तत्र काले भाटलो-भटगिरि सुत। नागरा। म (1-3) हा प्रजा। पलोकार्थ। वरुण-देव थापितु। इदम भोग्य नाना भो (1-4) कणस समुत्पन्य। पोश माशो थापितं इति शुभं। बाढ़ाई कालाणि। (-5)। सतधार देव पुत्र देव। महाप्रजा। जोद धानिकं समुत्पन्य (-6) मुल द्र।

(अनुवाद) मूल अंग्रेज़ी से अनूदित

ओं स्वस्ति। महाधिराज जष्ट वर्मन् के सिंहासंनारूढ़ होने के प्रथम वर्ष शास्त्र संवत् 81 को (यह शिला) स्थापित की गई। इस समय नागरा सुपुत्र भटलो और भटगिरी तथा महा प्रजा ने परलोकार्थ वरुण देव की स्थापना की। इसके भोग के लिए नाना प्रकार के भोग जुटाए गये हैं। इस (शिला) को पौष मास में स्थापित किया गया है ताकि शुभ रहे। बढ़ई का नाम कालणि है। शिला का मिस्त्री देव सुपुत्र देव (है) महाप्रजा। सभी लोगों ने अन्न उपलब्ध कराया। मूल्य 20 (30) द्रम। "द्र" का यहां अर्थ द्रम से है। द्रम उस समय प्रचलित सिक्का था।

शिलालेख की दुर्दशा पर एक नज़र

ऐसा लगता है कि कुछ ही समय में यह शिलालेख नष्ट हो जाएगा। इस शिला तक झाड़ियों के मध्य से गुजर कर अत्यन्त कठिनाई से पहुंचा जा सकता है। पहने हुए कपड़े के चीथड़े हो जायें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। मूर्तियों के मुख पर लगे घी के चिह्न से ऐसा प्रतीत होता है कि गांव निवासी अब भी अपने पूर्वजों की थाती देवता का पूजन कभी कर लेते हैं परन्तु इस स्मृति-चिह्न को नष्ट होते देख किसी को भी चिन्ता नहीं हुई जब कि 3/4 शिला भूमिगत हो चुकी है और शेष 1/4 बाहर उदास मुद्रा में झांक रही है। यह ऐतिहासिक और पुरातात्विक महत्व की शिला यदि अब भी बचाई जा सके तो श्रेयस्कर होगा। इस पनघट शिला का दूसरा दो-तीन छोटी पंक्ति का लेख उस समय ही नष्ट हो चुका था, जब सन् 1905 ई॰ के आस-पास पुरातत्व विभाग द्वारा इस शिला का अध्ययन किया जा रहा था। उस समय भी इसका कुछ भाग जमीन में धंस चुका था। अब जब कि यह डूबने के कगार पर है—थोड़ी सी खुदाई कर या तो इसे सुरक्षित स्थान पर रखा जा सकता है या यहीं इसकी सुरक्षा की व्यवस्था की जा सकती है। स्थानीय पंचायत भी इसकी सुरक्षा कर सकती है।

गांव साहली का पनघट शिलालेख

पांगी के मुख्यालय किलाड़ से 16 कि॰ मी॰ के फासले पर परगना साच का मुख्यालय है। यहीं से लगभग 14 कि॰ मी॰ साहली नामक गांव है। यहां सन् 1170 ई॰ को स्थापित की गई एक पनिहार शिला है जिस

पर देवी-देवताओं की अद्भुत मूर्तियां अत्यन्त सुन्दर और कलात्मक ढंग से खुदी हैं। उनके बीच में लम्बी तीन पंक्तियों का एक शिलालेख भी खुदा है जो उस समय के इतिहास पर प्रकाश डालता है। शिला छः फुट के करीब लम्बी है और लगभग चार फुट ऊंची है अतः लेख की पंक्तियों की लम्बाई पांच फुट से कम नहीं। समीप जाते ही ऐसा लगता है कि मूर्तियां साकार और जीवित हैं और आगंतुक को अपने जमाने की कथा सुना रही है। एंटिक्वीटीज ऑफ चम्बा के अध्ययन के बाद उन्हें रिकार्ड किया गया है। साथ ही शिला लेख का विवरण मिलता है।

इस शिला को सन् 1170 ई॰ में वहां के ही सामंत लुद्रपाल ने स्थापित किया था। उस समय वहां पानी का पनिहार था। लेखक ने स्वयं वहां 20-8-91 को जाकर उस शिला का अध्ययन किया। पानी की लम्बी बावली अब भी उस शिला के नीचे बनी हुई है। बावली को तराशे हुए और बेल-बूटे से अलंकृत पत्थर की शिलाओं से चिना गया है। बावली के सामने मोटी शिलाएं बिछी हैं जिससे पनिहार की बैठक चौरस आकार में उसी तरह सजी है। समीप ही "शरण" शैली का एक कोठेनुमा मकाहान है जिसमें इस शिला के संस्थापक सामन्त राणा लुद्र पाल के वंशज रहते हैं जो अब साधारण कृषकों की गिनती में आते हैं।

साथ ही पहाड़ी शैली का पुराना भवन है जो वहां के सामन्तों का स्मृति चिह्न कहा जा सकता है। इसकी बनावट और अन्दर लकड़ी पर की गई नक्काशी वहां की पुरातन लोककला का उत्कृष्ट नमूना है। शिला अब जलविहीन खड़ी है पानी अब साथ ही कुछ दूरी पर है। पुरानी होने के कारण शिला में अब कुछ विकृति आना स्वभाविक है। इसके निचले कोने से एक मूर्ति टूट कर नीचे गिर पड़ी है। शिला खुली दीवार के सहारे खड़ी है जिसका झुकाव अब आगे की ओर हो गया है। ऐसा लगता है कि कभी यह आगे को गिर पड़ेगी। यदि ऐसा हुआ तो यह ऐतिहासिक महत्व का अद्भुत पुरातत्त्वावशेष अकारण ही नष्ट हो जाएगा। शिलालेख भी अब धूमिल पड़ गया है।

शिला के ऊपरी भाग में एक ही पंक्ति में पांच चतुर्भुज देवता खुदे हैं जिनके वाहन उनके आगे दिये हैं। सभी मूर्तियों की दाहिनी टांगें ऊपर और बायीं टांगे नीचे हैं। इस प्रकार पांचों मूर्तियां ललितासन मुद्रा में बनाई

गई हैं। इस शिला की यह विशेषता है कि मूर्ति का परिचय उन पर लिखा है।

मध्य में शिव की मूर्ति है जिस पर लोकपाल ईशान लिखा है। अष्ट दिक्पालों में ईशान का स्थान उत्तर पूर्व है।

ईशान की दायीं ओर लोकपाल इन्द्र की मूर्ति है जिसके दाएं हाथ में अंकुश और कमल है तथा बायें में गदा और शंख है। हिन्दू मूर्ति शास्त्र के अनुसार इन्द्र अष्ट दिक्पालों में पूर्व दिशा के लोकपाल हैं।

शिव की बायीं ओर की मूर्ति को लोक-पाल वरुण लिखा है। वरुण दिक्पालों में पश्चिम दिशा के लोक-पाल हैं।

अन्य दो मूर्तियां गणेश और कार्तिकेय की हैं। शिला के निचले भाग में सुन्दर और कलात्मक ढंग से अलग-अलग व्यक्तित्व में आठ नदियों को मूर्तरूप दिया गया है, हर नदी आकर्षक ढंग से कलश लिए है। उन्हें इनके वाहनों की सहायता से पहचाना जा सकता है साथ ही उनका परिचय स्पष्ट अक्षरों में दिया है। जेहलम को प्राचीन काल में 'वितस्ता' की संज्ञा दी जाती थी। अब भी कश्मीरी लोग जेहलम को 'वियथ' कहते हैं। यह वितस्ता का ही अपभ्रंश रूप है। इस शिलालेख में भी जेहलम को वियथ लिखा है। अंतिम नदी की मूर्ति टूट कर नष्ट हो चुकी है। सातवीं नदी की आकृति में भी क्षति से व्यवधान आया है।

शिला लेख

ओं स्वस्ति। ओं जयति भुवण कारणं। स्वयंभु जयति पुर नंदमुरारि जयति शोसुतानिरूह देहि दुरिताभय पहारो हरश्व देवाह नमस्तुड शिर शुम्बि चन्द्र-चामर-चारन्वे चौ लोका नगर रंभू-भूल (स्तु भामय शभ्वे नगस्यकाल कालदेह महातः अपान-यह पीठाय सिवाम् व्यक्ति सुतम परम भ (1-2) टार महाराज परमेश्वर श्रीमल्ललित वरमदेव विजय राज्ये सम्बत 27 शास्त्रीय सम्बत 49 व शुति 13 रवि दिने मूलत क्षेत्रः तिथि चये देश्या पांगत्याम शोभाण श्री कालुक वर्तमाने प्रतिहार श्री नैणुक दण्ड वासिक शिछकतुक कोषिक-महक संगाण शिरिक सल्हि वसित राजानक महा श्री लुद्रपाल सल्क (1-3) भार्या। राज्ञी श्री देल्हेन। शिव लोका श्री विष्णु परलो का अरधणे स्वर्ग लोक। क्रीडास्थे वरूण देव स्थापितः सरावण जलं-जलं श्रेष्ठ निर्मल

शीतलम जस कीर्ति शुतार्थ दुति शुभ लिखितमिदं कायस्थ सेखितः सूत्रधार-सहजा तथा गागेनं स्थापितम्-सत्यमेव स्थापितम्।

अनुवाद :

स्वस्ति। जगत के कारण स्वयंभू ब्रह्मा की जय हो। जय हो दुश्मनों के दुर्गादि को ध्वस्त कर्ता इन्द्र या शिव की। जय हो कृष्ण मुरारि की। जय हो उस देव की जिस के संग पार्वती रहती है। अर्थात् जय हो शिव शम्भू की। जय हो उसकी जो इस धरा का दुःख निवारण करता है।

सत्कार हो उस महादेव (शम्भू) का जो परम सुन्दर है और चन्द्रमा जिसके मस्तक का चुम्बन करता है। जो जगत का मूल कारण है जो जगत का रक्षक है। उस शिव का सत्कार हो जो चन्द्र धारण किये हैं जिसका अपान देश वास है वह जगत का कर्ता है उस शिव के लिए सत्कार हो। परमभट्टारक महाराजाधिराज ललित वर्मन् द्वारा विजित राज्य के सिंहासनारूढ़ होने के 27 वें वर्ष राज्य संवत् तदनुसार शास्त्र संवत् 46 श्रवण मास की शुदि 13 को रविवार के दिन मूल नक्षत्र 13 को (शिला की स्थापना के समय) पांगी के शेगण कालु प्रतिहार श्री नैणुं दण्डवासिक कुतुक कोष्ठिक (कोठयाला) सल्ही के सेगाण राजनक (सामन्त संस्थापक) लुद्रपाल (राणा) लुद्रपाल की रानी देल्ह (राणा की पत्नी) के रूप में संस्थापक थे जिन्होंने वरुणदेव की शिला की स्थापना शिव और विष्णु का पुण्य प्राप्त करते हुए स्वर्ग लोक का आनन्द प्राप्त करने के लिए की। यह निर्मल और ठण्डा नीर यश कीर्ति और प्रसिद्धि लाए।

इस शुभ लिखावट को लिखने वाले कायस्थ (कानूनी लिखत लिखने वाला) सेख (नामक व्यक्ति) है, मिस्त्री का कार्य करने वाले सहजा और गग्गा है।

टिप्पणी :

1. इस शिला लेख में पांगी का पुराना नाम 'पांगति' भिलता है।

2. शिला के संस्थापक राजनक (सामन्त राणा साल्ही) लुद्रपाल और उनकी पत्नी देल्ह हैं।

3. शेगाण (सेगाण कोष्ठिक) एक ही परगना या पांगी का उस समय

का अधिकारी है जिसका नाम कालु या कालक है। ऐंटिक्वीटीज़ ऑफ चम्वा के अनुसार यह (शंगाण) पांगी का मुख्य अधिकारी हो सकता है। शेगाण शब्द तिब्बती भाषा का बताया गया है परन्तु कालू नामक व्यक्ति पांगी का निवासी इस पद पर था। पाठकों की जानकारी के लिए यह याद दिलाना अनिवार्य है कि कालान्तर में पांगी कारदारों की निगरानी के लिए 'पालसर' हुआ करता था जो सारी बजारत का गवर्नर माना जाता था। पाडर का रत्नु इसी प्रकार का मुख्य कारदार या अधिकारी था जिसने जंसकर क्षेत्र को चम्बा के अधीन किया था।

4. दण्डवासिक और प्रतिहार भी वहां उस समय के पांगी के अधिकारी माने जाते हैं। दण्डवासिक का नाम कुतुक और प्रतिहार नैणु नामक व्यक्ति है। इस शिला की स्थापना चम्वा के राजा ललित वर्मन् के सिंहासनारूढ़ होने के 27वें वर्ष में हुई थी। राजा ललित वर्मन् इस प्रकार 1143 ई. को गद्दी पर बैठे थे उस समय शास्त्र सम्वत् 46 था। इस शिला की काल गणना के हिसाब से ललित वर्मन् की सिंहासन पर बैठने की तिथि शुद्ध की गई है। 'प्रतिहार' पद इस शिलालेख के समकालीन अन्य शिलालेखों में भी मिला है।

❑

नवम् अध्याय

प्रमुख व्यक्ति

रत्नु पालसर

पांगी का पाडर क्षेत्र भी चम्बा रियासत में था जो सन् 1835 को जोराबर सिंह ने छीन कर जम्मू रियासत में मिला दिया था। अब यह भाग जम्मू-कश्मीर में है। पाडर में पांगी वजारत के मुखिया कारदार रहा करते थे। उस समय पांगी वजारत के तीन परगनों (साच, किलाड़ और धरवास) के कारदारों पर एक मुख्य कारदार हुआ करता था। जिसे पालसर की संज्ञा दी जाती थी।

भरमौर वजारत में इस प्रकार का मुख्य कारदार आमीन कहलाता था। पालसर और आमीन अन्य परगनों के कारदारों पर निगरानी रखते थे। रत्नु एक वफादार पालसर था जो चम्बा नरेश के प्रति अत्यन्त कर्तव्यनिष्ठ था। उसी की कर्तव्यनिष्ठता और बहादुरी थी कि चम्बा नरेश चढ़त सिंह (1808 से 1844 ई॰) के राज्यकाल में सन् 1820-25 के मध्य उसने जंसकर के राजा पर धावा बोलकर उसे चम्बा के अधीन करवाया। इससे पहले जंसकर का राजा लद्दाख का करदाता था।

पाडर क्षेत्र में चम्बा के राजा छत्र सिंह (1664-1690 ई॰) के समय में एक किला बना था जिसे छत्रगढ़ कहा जाता था लेकिन सन् 1835 ई॰ में जब जम्मू के राजा गुलाबसिंह के मुख्य सेनापति जोरावर सिंह कहलूरिया लद्दाख को जम्मू के अधीन लाने के अभियान पर थे और लद्दाख और जंसकर को विजित कर उसके सैनिक पाडर के रास्ते जम्मू जा रहे थे, तो पाडर के लोगों को संदेह हो गया कि कहीं जम्मू के डोगरा सिपाही पाडर पर भी आक्रमण न कर दें फलतः रत्नु पालसर के नेतृत्व में उन्होंने कुछ डोगरा सिपाहियों को पकड़ कर राजा चम्बा के पास भेज दिया।

चम्बा और जम्मू के सम्बन्ध उस समय आपस में अच्छे थे अतः चम्बा नरेश चढ़तसिंह ने रत्नु के प्रति नाराज़गी प्रकट की। उधर जब जम्मू

नरेश को पता लगा तो राजा गुलाब सिंह ने जोरावर सिंह कहलूरिया को पुनः पाडर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। रत्नु पालसर ने चन्द्रभागा के पुल को तोड़कर तीन मास तक डोगरा सेना को दूर रखा परन्तु तीन मास के पश्चात् जोरावर सिंह ने झूला बनाकर पाडर पर आक्रमण कर दिया।

बहुत-से लोगों को मौत के घाट उतारा गया और बहुतों के हाथ-पांव काट कर अंगहीन बना दिया। रत्नु पालसर भागा-भागा चम्बा पहुंचा। राजा चम्बा उससे स्थिति बिगाड़ने के कारण पहले से ही नाराज थे अतः उसे राजा जम्मू के हवाले कर दिया।

इस प्रकार जंसकर और पाडर सन् 1835 ई. को जम्मू के अधीन आए। छत्रगढ़ का नाम गुलाब गढ़ रखा। कई दिनों तक रत्नु पालसर राजा जम्मू की हिरासत में रहा। कुछ समय के बाद उसे जागीर दी गई और किश्तवाड़ भेज दिया गया। जब उसके सम्बन्ध राजा गुलाब सिंह से अच्छे हो गये तो उसे वापस पाडर जाने की आज्ञा दे दी गई।

रत्नु की वफादारी

जब चम्बा नरेश चढ़त सिंह का देहान्त हो गया तो रत्नु ने अपना सिर और मूंछें मुंडा दीं इस पर जम्मू नरेश गुलाब सिंह ने उसे बुलाकर पूछा—"रत्नु तुम जानते हो कि तुम मेरी प्रजा हो, चम्बा नरेश के देहान्त पर तुमने मेरी सीमा में रहते हुए और मेरी प्रजा होते हुए अपना सिर और मूंछे क्यों मुंडाई।"

इस पर उसने निधड़क होकर उत्तर दिया—"महाराज आप स्वयं जानते हैं कि राजा चढ़त सिंह मेरे स्वामी थे।"

इस निधड़क प्रत्युत्तर और उसकी स्वामिभक्ति पर महाराजा गुलाब सिंह बहुत खुश हुए और उसे पुनः रिहा कर दिया। रत्नु पालसर की पांगी क्षेत्र के प्रति सेवाएं चिर स्मरणीय हैं।

बाबू दौलत राम

बाबू दौलत राम लाला चरणदास के इकलौते पुत्र थे। लाला चरणदास पांगी में व्यापार करते थे। भगवान की कृपा से उनके पास अपार धनराशि थी। उनको पांगी इतनी पसन्द थी कि वह अपना कारोबार

पांगी में ही बढ़ाना चाहते थे। उन्होंने स्थानीय पंगवाल महिला से विवाह किया था जिसके गर्भ से इन्हें 12 अगस्त 1912 ई. को इकलौता पुत्र दौलतराम मिला जिसे वह 'डेलिया' कहकर पुकारते थे। दौलतराम जी की तीन बहनें थीं। वह पांगी के करेल गांव में ही जन्मे और बड़े हुए। लाला चरणदास की पैतृक सम्पत्ति और मकान चम्बा में भी था।

बालक दौलतराम की शिक्षा चम्बा और लाहौर में हुई। वह साहित्यिक रुचि के व्यक्ति थे। कई पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख और कहानियां छपती रहीं। वह कविताएं भी लिखते थे। पढ़ने-लिखने में तीव्र बुद्धि थे।

धीरे-धीरे उनका झुकाव राजनीति की ओर हो गया। वह कलम के धनी थे अतः स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के अलावा स्वतन्त्रता आंदोलन सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन करते रहे। उनका जवाहर लाल नेहरू से भी सम्पर्क हुआ।

उस समय शिमला और पंजाब की पहाड़ी रियासतों में प्रजामण्डल गठित हुए थे। उन्होंने भी चम्बा में प्रजामण्डल की गतिविधियां बढ़ाईं। उनकी चम्बा नरेश से स्वच्छ शासन की मांग थी अतः अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए स्थान-स्थान पर बैठकें करते रहे। जब पहाड़ी रियासतों का विलय हो रहा था तो उनके पुत्र खेमराज गुप्त सागर के अनुसार शेख अब्दुल्ला ने उनसे चम्बा को जम्मू-कश्मीर के साथ मिलाने का आग्रह किया परन्तु उन्होंने चम्बा का हिमाचल प्रदेश के साथ विलय करना श्रेयस्कर समझा।

जब 1955 ई. को श्री जवाहरलाल नेहरू चम्बा आये तो उन्होंने दौलतराम जी को इस दौरान सदा अपने साथ रखा। जब हिमाचल प्रदेश की विधानसभा के लिए प्रथम चुनाव हुए तो वह पांगी से कांग्रेस टिकट पर विधानसभा के लिए निर्वाचित हुए। पांगी आपका पैतृक क्षेत्र था अतः आपने जी-जान से पंगवालों की सेवा की। पंगवाल लोग आपको बाबू कहकर पुकारते थे।

उन्होंने अपनी अपार धन-सम्पत्ति लोगों की सेवा में लगा दी। उन्हें पंगवाल लोग बहुत चाहते थे। एक पंगवाल लोकगीत के स्वर इस के साक्षी हैं :

कणक गराई सरकुण्डे दे पधरे,
जोड़ी हवाई जहाज, सरकुण्डे दे पधरे।
बाबू दौलत राम, सरकुण्डे दे पधरे,
सारे महकमे सरकुण्डे दे पधरे,
भोटली दे नाच सरकुण्डे दे पधरे ॥

सरकुण्ड का पधर किलाड़ में स्थित है जहां पहली बार अन्न की कमी होने पर श्री दौलतराम के आग्रह पर हवाई जहाज से अन्न गिराया गया था। अब वहां पर हैलिकाप्टर पट्टी है।

उनके बड़े पुत्र खेमराज गुप्त सागर अच्छे साहित्यिक व्यक्ति हैं और आकाशवाणी शिमला में जाने-माने कलाकार रहे। आपके लेख और कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

उनके दूसरे पुत्र सत्येन्द्र राज गुप्ता किलाड़ में कला-अध्यापक हैं। आप साहित्यकार हैं और पंगवाल संस्कृति के अच्छे ज्ञाता हैं।

उनके तीसरे पुत्र जम्मू-कश्मीर प्रशासन के केडर में आई. ए. एस. प्रशासन अधिकारी हैं तथा आयुक्त के पद पर आसीन हैं।

उनके एक पुत्र स्वर्गवासी हो चुके हैं।

सबसे छोटे पुत्र शारीरिक शिक्षक हैं।

बाबू दौलतराम आप 9 सितम्बर 1977 ई. को अपनी मधुर स्मृतियां छोड़ स्वर्गवास हुए।

आर्य समाज आंदोलन

पाठक आश्चर्यचकित हो सकते हैं कि पांगी जैसे दुर्गम क्षेत्र में आर्य समाज का आंदोलन कैसे? सभी जानते हैं कि निम्नवर्ग को दूसरे धर्म-प्रचारकों द्वारा दूसरे धर्म में परिवर्तित होने से बचाने के लिए आर्य समाज का आंदोलन आरम्भ हुआ ताकि सबको समान समझा जाये। छुआछूत की बीमारी को मिटाया जाये। हर मानव को समान समझा जाये। अपनी आर्य संस्कृति का आदर किया जाये। निम्नवर्ग को हीनभावना से बचाया जाये।

जिला चम्बा में इस आंदोलन के प्रवर्तक पंडित रामशरण जी थे। जिन्हें लोग 'गुरुजी' के नाम से जानते हैं। वह पंजाब के रहने वाले थे और रियासत काल में स्टेट हाई स्कूल चम्बा में फारसी के अध्यापक थे। बाद में ग्रामीण स्कूलों के अफसर भी लगे। वह फारसी के साथ-साथ संस्कृत के भी प्रकाण्ड विद्वान थे, तथा वेदों के ज्ञाता थे। आपने बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में आर्य समाज का प्रचार आरम्भ किया। गुरुजी गांव-गांव जाते निम्न वर्ग के लोगों को आर्य समाज का सदस्य बनाते, उन्हें हवन विधि सिखाते तथा उन्हें आर्य समाज के नियम से अवगत कराते।

उनमें समता की भावना पैदा करते तथा उन्हें बताते कि समाज में सभी समान हैं। कोई भी छोटा-बड़ा नहीं है। किसी से घृणा और द्वेष नहीं करना चाहिए।

वेद हमारे धर्मशास्त्र हैं, हम सभी आर्यों की संतान हैं। हमें न तो मांस भक्षण करना चाहिये और न ही मदिरापान करना चाहिए। सामाजिक कुरीतियों से बचना चाहिए।

जो लोग आर्य समाज के नियमों का पालन करना स्वीकारते उन्हें वह आर्य कहते अतः सभी तथाकथित निम्न वर्ग के लोगों ने अपनी जाति आर्य लिखानी आरम्भ की। चम्बा में इस प्रकार आर्य जाति की श्रेणी उत्पन्न हुई। जहां महात्मा गांधी निम्न वर्ग को हरिजन की संज्ञा देते थे

वहां वह इस प्रकार की जाति को आदरसूचक शब्द आर्य से सम्बोधित करना श्रेयस्कर समझते थे। स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज तथा वेदों का प्रचार करते-करते गुरुजी पांगी के दुर्गम स्थल में भी पहुंचे, वेद का संदेश दिया, होम और हवन करने की विधि बताई। वह यह कार्य निस्वार्थभाव से करते।

उस समय अस्सी वर्ष की आयु होने पर भी वह ऊंचे दर्रों को लांघते और पांगी में होम और हवन सिखाते। पांगी की आर्य जाति उनके संदेश को आज भी याद करती है।

आपने बाद में संन्यास ले लिया था तथा स्वामी शांतानन्द नाम से विख्यात होकर अंतिम दिन चम्बा में ही बिताते हुए नश्वर शरीर को छोड़ा।

विकास और सम्भावनाएं

रजवाड़ों के समय पांगी एक अत्यन्त दुर्गम स्थल था। यहां पहुंचना जोखिम का कार्य था। जिस सरकारी कर्मचारी को यहां कर्तव्य निभाने के लिए भेजा जाता था उसे Funeral Charges पहले ही दे दिये जाते थे कि न जाने वह वापस आये न आये। रियासती काल में जंगल यहां पर कम्पनी को ठेके पर दिये जाते थे। कम्पनी हजारों की संख्या में मजदूर लगाती थी और बहुमूल्य दयार के वृक्ष कौड़ी के दाम काट लिये जाते थे। उन्हें चन्द्रभागा नदी में बहाकर मैदान में महंगे दामों पर बेच दिया जाता था। उस समय खच्चर तक का चलना मुश्किल था। यहां तक कि ऊंचे दर्रों से मनुष्य भी बड़ी मुश्किल से गुजरता था। राशन, भेड़-बकरियों पर पहुंचाया जाता था। राशन पहुंचाने का काम कम्पनी का होता था। कम्पनी अपने मजदूरों को सस्ते दाम पर अन्न (राशन) देती थी। इने-गिने सरकारी कर्मचारी भी इसी राशन पर निर्भर करते थे।

सन् 1881 ई॰ में कम्पनी के दो हजार से भी अधिक कर्मचारी और मजदूर जंगलात की कटाई में मशगूल थे। इस प्रकार अपार वन-सम्पदा का दुरुपयोग एवं विनाश किया जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी यही उसूल चलता रहा। अभी कुछ वर्ष पूर्व यह ठेकेदारी प्रणाली समाप्त हुई है। जब जंगल काफी हद तक कट चुके हैं। अब आवश्यकता पड़ने पर कारपोरेशन नियंत्रित रूप में जंगल काटती है। इससे पता लगता है कि उस समय पांगी कितना पिछड़ा था। जहां तक शिक्षा के विकास की बात है उस समय पांगी के किलाड़ में केवल एक प्राईमरी स्कूल हुआ करता था।

अब पंगवाल जनजाति के लिये किलाड़ में एक वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय है। चार अन्य उच्च विद्यालय हैं जो साच, सेचु, धरवास और सुराल में हैं। पांच माध्यमिक विद्यालय घाटी के विभिन्न भागों में कार्यरत हैं। पचास के करीब प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, दो विंटर हैल्थ पोस्ट तथा किलाड़ में एक ग्रामीण अस्पताल भी है। जंगलात विभाग के डी॰ एफ॰

ओ. स्तर तक के दफ्तर हैं। पशु चिकित्सालय भी हैं। सन् 1987 से सिंगल लाइन स्तर पर आवासीय आयुक्त के अधीन प्रशासन की कार्य प्रणाली चली है। हर विभाग का प्रतिनिधि पांगी घाटी में वर्तमान है। रियासत काल में पांगी को तीन परगनों में बांटा हुआ था। ये परगने किलाड़, धरवास और साच थे। परगने के मुख्य करदार चाड़ और लिखन्यारा हुआ करते थे। उन पर पालसर नामक स्थानीय कारदार निगरानी करता था। इस प्रकार पांगी स्वयं एक वज़ारत थी जो एक वज़ीर के अधीन थी जो रियासत की राजधानी चम्बा में रहता था। इस प्रकार प्रायः स्थानीय कारदार ही सब कुछ थे अतः विकास की ओर विशेष ध्यान भी नहीं दिया गया। दिया भी कैसे जाता, रियासत के वित्तीय साधन इतने समृद्ध नहीं थे कि इतना खर्च कर सकते।

स्वतन्त्रता प्राप्ति तक तो चम्बा में भी मोटर नहीं पहुंची थी तो पांगी के विकास के विषय में क्या आशा कर सकते थे। उस समय लोग साच के दर्रे से चम्बा आते-जाते थे जो छः मास के लिए बन्द रहता। छः महीने बाद चलना भी कठिन होता। दर्रा तो वास्तव में जून और जुलाई में ही खुलता और फिर अक्टूबर मास में बन्द हो जाता। दूसरा रास्ता लाहौल होकर रोहतांग से भी जून और जुलाई में खुलता। तीसरा मार्ग जम्मू-किश्तवाड़ से होकर सारा वर्ष खुला रहता परन्तु चलते-चलते आठ से दस दिन लग जाते।

भारत सरकार रोहतांग से धीरे-धीरे सड़क निर्माण का काम करती रही, अब लाहौल की ओर से पांगी के पूर्वी छोर पर पुर्थी नामक गांव में मोटर पहुंची है। पश्चिम में सांसरी नाला अभी तक पुर्थी से 70 कि॰ मी॰ की दूरी पर है और मध्य में किलाड़ अभी 40 कि॰मी॰ के करीब है। बीच में कुछ दूरी तक जीप चलने लगी है। साच पास से होकर अब खच्चर चलने लगी है।

किलाड़ की ओर से साच पास की ओर 15-20 कि॰मी॰ तक जीप भी चलने लगी है जिसे हैलीकाप्टर से नीचे उतारा गया था। उधर भूंतर (कुल्लू) से किलाड़ के लिए अनियमित तौर पर हैलीकाप्टर की उड़ान भी होती है। दूसरी तरफ पठानकोट से किलाड़ के लिए भी हैलीकाप्टर उड़ान भरता है। यदि अकस्मात् कोई बीमार पड़ जाये तो चम्बा नगर तक

हैलीकाप्टर मरीज को लेकर उड़ान भरता है। आधे घंटे में ज़िला अस्पताल में चिकित्सा सुविधा मिल जाती है।

सर्दियों के लिए सरकार अन्न भण्डारण हैलीकाप्टर की सहायता से ही करती है। पांगी घाटी में प्रतिदिन तीन घंटे के लिए डीजल इंजन या सौर-पैनल से प्रकाश दिया जाता है परन्तु कहीं-कहीं बैटरी न होने के कारण यह कार्य ठप्प पड़ा है जहां-जहां डीज़ल इंजन है, सप्लाई जारी है।

सड़क निर्माण कार्य भारत सरकार की ओर से जोरों पर लगा है। किलाड़ से साच की ओर का कार्य हिमाचल लोक निर्माण विभाग की ओर से हो रहा है।

इससे पूर्व नदी पार करने के लिए परम्परागत ढंग से बने वृक्ष की टहनियों को रस्सी का रूप देकर उनसे झूला तैयार किया जाता था। अपनी जान हथेली पर रखकर ऐसे पुल से नदी को लांघा जाता था। धीरे-धीरे झूले का स्थान घरूरू ने लिया। घरूरू भी खतरे से खाली नहीं थे। उसके स्थान पर Suspension Bridge बने जो आजकल भी बने हैं। किलाड़ साच-पास सड़क पर चन्द्रभागा नदी पर इसी प्रकार का बड़ा पुल बना है जिस पर जीप चलती है। यह आधुनिक ढंग का पुल है जिस पर लाखों रुपये खर्च हुए हैं। तार पर बने कई साधारण पुल भी बनाये गए हैं।

सरकार ने कार्यालय के लिए कई भवन बनाये हैं जिन पर करोड़ों रुपये खर्च हुए हैं। सुधरे बीज भी किसानों को दिये जाते हैं। बागीचे लगाने के लिए फार्म से विभिन्न प्रकार के पौधे भी दिये जाते हैं। अच्छी नस्ल के पशु भी दिये गए हैं। भेड़-बकरियों की नस्ल सुधारने के लिए अच्छी नस्ल के मेढ़े भी हैं। पांगी क्षेत्र के लिए जिमनाजियम भवन निर्माण के लिए 38 लाख रुपये स्वीकृत किये गये हैं। इसी प्रकार किलाड़ हाइडल प्रौजैक्ट के लिए पर्याप्त धनराशि का बजट प्रावधान किया गया है।

निकट भविष्य में पांगी एक अच्छा पर्यटक स्थल भी बन सकता है जिससे स्थानीय जनता को लाभ पहुंच सकता है। हाइडल प्रौजैक्ट के चालू होने पर बिजली पर आधारित उद्योग लग सकते हैं। यातायात की सुविधा मिलने पर बागवानी की अत्युत्तम सम्भावनाएं हैं। वन सम्पदा को भी सुधारा जा सकता है। ठांगी (Hazelnut) चिलगोज़ा, काला जीरा, केसर इत्यादि की फसलों पर अनुसंधान कर इन फलों और फसलों को बढ़ावा

दिया जा सकता है। इस प्रकार पांगी के जंगल में ठांगी, चिलगोजा और अखरोट के वृक्ष अधिक से अधिक लगाये जा सकते हैं। इससे स्थानीय लोगों की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सकता है। इसमें कोई शक नहीं कि चिलगोजा का पेड़ 30-40 वर्ष के बाद फल देने योग्य होता है। दयार का वृक्ष सौ साल के बाद काटने योग्य होता है। उसे भी हम लगाते हैं जो कई पीढ़ियों के बाद हमारी सन्तानों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। यही दशा चिलगोजे की भी हो सकती है।

जब यातायात सुधर जाये तो जरसी नस्ल की गाय भी एक अनुपम देन होगी। पांगी में कई प्रकार के खनिज पदार्थ लाभप्रद हो सकते हैं। यातायात के सुधरने पर उनका अनुसंधान अपेक्षित है। माइका तो काफी मात्रा में उपलब्ध है ही यदि आर्थिक तौर पर लाभप्रद हुआ तो स्थानीय लोगों के लिए यह वरदान होगा। इसी प्रकार कई अन्य उद्योग भी सम्भव हो सकेंगे।

निष्कर्ष

परम्परा और यथार्थ में पंगवाल जनजाति

पंगवाल जनजाति की अपनी संस्कृति और परम्पराएं हैं। उन पर उनका अपार विश्वास है। उनका अपनी परम्पराओं पर दृढ़ विश्वास यथार्थ जीवन में भी खरा उतरा है। उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं दीखता। उनके देवी-देवता उनके यथार्थ जीवन में साथ रहे हैं। देवी-देवताओं पर अपार श्रद्धा ने उन्हें दैनिक जीवन में सन्तोष प्रदान किया है।

उनके देवी-देवताओं के विश्वास ने उन्हें जीवन में सुख, समृद्धि और अपार शांति प्रदान की है। उनका देवता उनके दैनिक क्रिया-कलापों पर निगरानी रखता है। यही कारण है कि पंगवाल महिला गाय का दूध और घी खाने से पहले अपने नाग देवता के निमित्तार्थ अलग रख लेती है। अपने पितरों के प्रति भी उतनी ही आस्था से उनके पूजन के लिए अलग बर्तन में घी रख लिया जाता है। देवता पर उनकी अपार श्रद्धा है। वह अदृश्य रूप में उनके पशुधन का रक्षक है।

दैंतनाग ने एक पंगवालन (जो उसे पीठ पर उठाकर किलाड़ लाई थी) से प्रण किया था कि फुलयात्रा के दौरान वह निश्चिंत होकर यात्रा देखे। वह उसके स्वतंत्र रूप से वन में विचरण करते पशुओं की रक्षा करेगा। अब पंगवाल महिलाएं फुल यात्रा के समय अपने पशुओं को बिना ग्वाले के जंगल में छोड़ आती हैं और स्वयं फुल यात्रा देखने में मस्त हो जाती हैं। पशु स्वयं वन में विचरण करते सायं को सुरक्षित घर लौटते हैं।

सत्यनिष्ठ और धर्मपरायण मिंधला गांव के लोग आज भी मिंधला भगवाती के शाप को खुशी से झेलते हैं। वे अपने छोटे-से गांव में एक ही बैल से हल चलाते हैं। जबकि पांगी के अन्य क्षेत्र में दो बैल जोते जाते हैं। चरखे पर आज भी सूत नहीं कातते। वे सूत तो कातते हैं परन्तु चरखे से नहीं। चरखा चलाना उनके लिए दैवी-शाप है।

तीसरा शाप उन्हें चारपाई पर न सोने का है। जिसका पालन अब

तक भी वे ईमानदारी से कहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे तख्तपोश प्रयोग में ला सकते हैं।

सच परगना में 'सामल' की रात को घर से न निकलना किलाड़ क्षेत्र में शिवरात्रि के दौरान लगातार तीन दिन के लिए रात्रि को बाहर न जाना, उनके लोक विश्वास के यथार्थ सत्य हैं। उनका अब भी विश्वास है कि रात को राक्षस विचरण करते हैं और किसी भी समय मनुष्य का भक्षण कर सकते हैं।

फुल यात्रा के पहले दिन चेले द्वारा छलकुकड़ी (मुर्गी) दिखाना और फिर मरने का अभिनय करना तिस पर वाद्ययंत्रियों द्वारा 'ढढ' राग बजाना—एक परम्परागत विश्वास है। वे अब भी विश्वास करते हैं कि कैद किया राक्षस युगल अब तक जीवित है और शुभ राग बजाने पर वे राणा द्वारा किये प्रणानुसार कैद से रिहा होकर पुनः उत्पात मचा सकता है।

इसीलिए 'चेला' मरने का अभिनय करता है कि शुभ अवसर अभी तक आया ही नहीं। शल कुकड़ी (छल कुकड़ी) दिखाकर राक्षस को विश्वास दिलाया जाता है कि उसकी अमानत अभी तक सुरक्षित है। इस प्रकार विकास के मार्ग पर तीव्रता से बढ़ता हुआ जनजातीय क्षेत्र पांगी अपनी ऐतिहासिक धरोहर, लोक संस्कृति और परंपराओं को समेटे हुए है।

पंगवाल जन जाति

क्षेत्रफल : 1601 वर्ग कि॰ मी॰

जनसंख्या : 1991 की जनगणना के अनुसार : 14960 पु॰ और स्त्रियां दोनों।

दर्रे

पांगीधार से रावीघाटी और चुराह तहसील के लिये

साच पास : चुराह के बैरा परगना को

ऊंचाई : 14478 फुट

चनैनी पास : चुराह के परगना बैरा के गांव देवी कोठी पहुंचता हैं

ऊंचाई : 14382 फुट

माढु :

ऊंचाई : 14100 फुट

द्राटी : चम्बा तहसील के परगना साहो से

ऊंचाई : 15491 फुट

काली छो : त्रिलोकनाथ से भरमौर के परगना तुंदाह से

ऊंचाई : 15765 फुट

कुगती : लाहौल के गांव गोशाल से भरमौर के गांव कुगती से

ऊंचाई : 16536 फुट

चोभिया : लाहौल से भरमौर के गांव चुभिया से

ऊंचाई : 16447 फुट

व्यास घाटी कुल्लू से : **रोहतांग पास**

ऊंचाई : 14300 फुट

चन्द्रभागा घाटी से लद्दाख को (जंसकर धार से)

तवां पास : सेचुनाला के गांव तवां से लद्दाख को पांगी के गांव सुराल से शंख तथा कॉग पास (जंसकर धार से)

फसलें

खरीफ की फसलें :

कौशी, सियूल, फुल्लन, भरेस, बजरभंग, उड़द, रौंग (राजमाश), आलु, मक्की (घरनास क्षेत्र में)

रवि की फसलें :

जौ, गेहूं, एलो (बिना बलि का जौ)

सरसों इत्यादि

खनिज पदार्थ

अभ्रक : घरवास क्षेत्र

स्फटक : ऊंचे पर्वतों पर लोहे का अयस्क : कहीं-कहीं

सोना : चनाब (चन्द्रभागा) नदी में रेत को छानकर उपलब्ध

नीलम : पाडर (पड्डर) सीमांत क्षेत्र : जम्मू कश्मीर राज्य के अधीन

वन सम्पदा

वृक्ष :

जंगली अखरोट, बागवानी का अखरोट्

चील, दयार (देवदार), रै, तोष, ठांगी बन, वैदाह, अखरोट,

सफेदा (Poplar), प्याक, भोजपत्र, क्रूं (मलबरी की जाति का पेड़)

बागबानी के पेड़

अखरोट, सेब, नाशपाती, चैरीज़, चिलगोज़ा

(घरवास के क्षेत्र बागबानी आरंभ हो चुकी है)

जड़ी-बूटियां :

धूप, कुठ, कौड़, पतीस कड़वी, पतीस मीठी, किणास, सालम पंजा, बनक्कशा, काला ज़ीरा, मशरूम खेड़ी, गुच्छी इत्यादि

पशु :

बाघ, भालु (काला), भालु भूरा, रौंस (मस्क डियर) वनबलाव, रंध (नर जंगली भेड़), कर्थ (जंगली बकरा), मही (जंगली बकरी), जंगाल, त्रंगोल (आई बैक्स)

पालतू पशु :

गाय, बैल, चूर (सुरा गाय), याक (ऊंची चरागाहों-भटोरियों में)

वेशभूषा

आभूषण :

स्त्री : बालु, नथ, मुर्की, कड्डु डोडमाला, कांटे, कंगणु, टोके, बंगा, अंगूठी, पंजेबा

पुरुष : नंती, कंगणु, माला, अंगूठी।

वस्त्र :

स्त्री : जोजी, पट्टु, कमरी, सुत्थण, पुले (पूलें)

पुरुष : टोपी, लिक्खड़, कमरी (कमीज), सुत्थण, पुले

पकवान

लुच्ची, रोट, बकरू (आटे का), मण्डे, कड़ाह, उणस, औंस। खिचड़ी, अमला, मांस, दाल, भात।

घर का सामान

कुनाई (कुनाला), पठ, मनोटी, कुन्नी, छाण, फट्टण, चोई, सूप (साच में), दुहण, अरबानी, लुपरी, मंथ (साच में मनोटी को मंथ कहते हैं), घलेल (गोली का तेल), छोंछ–धूप धुखाने का मिट्टी या लोहे का बर्तन।

देवी-देवता

सिंघासनी माता, दैंतनाग, जरहयूं देवता, कासर नाग, बासर नाग, बासरनाग की बहन, शीतला माता, जनकासुर (धरवास), जगसरनाग, कोटासनी, सिंहासनी, शिव सिंह वाहन, नलकुण्ड देवता, मलासनी, मिंधला-वासनी, विलीन वासनी, क्वास का नाग देवता, प्रौढ नाग, महल देवता, विचवासनी, हिल्लोर का जरहयूं देवता, कड़हयूं (कैलाश), खण्डव नाग, गोधन नाग, शीतराज, धाच, पनघट शिलाएं, गौंपों के बौध देवता, दौंसर, करन (हेलु के स्थान पर)।

पंगवाल शब्द-सम्पदा

अंछी : झाड़दार पौधों के एक प्रकार के फल

अग्यारी : पंगवाल जनजाति की हवन विधि

अघवारी : ऊंची चरागाह पर दूसरा अस्थाई निवास।

अरबानी : मण्डा तैयार करने के लिये लुपरी तैयार करने का चम्मच।

आर्य :

जाति विशेष

उगरी : पंगवाल जनजाति के लोग शिवरात्रि से दो दिन पूर्व घर की छतों पर राक्षस भगाने के लिये रेखाएं खींचते हैं। उन पर चकमक पत्थर की ढेरी लगाते हैं। इस कार्य के पहले दिन को 'रेखी' और दूसरे को 'उंगरी' कहा जाता है।

उज्जैणी : पंगवाल जनजाति का एक विशेष त्यौहार।

उटैण : उत्तरायण का त्यौहार।

उणास : एक अंग्रेजी के 'एस' (S) प्रकार का एक पकवान।

एलो : एक प्रकार का बिना बालि का जौ का पौधा जिसके जौ शराब निकालने के लिये अत्युत्तम है।

औंस : पंगवालों का एक विशेष पकवान।

कंहु : ओझा, चेला।

कट्ठी : क्रिया, संस्कार।

कमी : कमीज़

कमरी : कमीज़

कलाऊ : दोपहर का अल्पाहार।

कुनाई : कुनाला : लकड़ी की बड़ी प्रात।

कूना : एक अन्न का नाम।

कांत : **कात** : लोहे की लुहारों द्वारा तैयार की गई कैंची।

खोल : पंगवालों का एक त्यौहार।

गड : नदी

गुगटु : किल्टु
चालणा : सुत्थण
च्यालु : एक त्यौहार
झंकर : पायल
तजोट : 'प्रजा' की बैठक
तल्हांज : एक सुन्दर फूल जिसका वर्णन लोकगीतों में हुआ है।
तुड़सी : तुलसी
दखैण : दक्षणायण का त्यौहार।
दिवेंते : कन्या पक्ष से आए बाराती।
धच्ची : धरती जिसका विशेष अवसर पर पूजन किया जाता है।
धाच्च : मृत व्यक्तियों के उकेरे स्मारक।
न्हास : छत पर डालने के लिये एक लम्बा आधार शहतीर।
टजोट : पंगवाल 'प्रजा' की बैठक।
टन : नन भेड़ों के लिये बनाया स्थान।
टोट : सत्तू से बनाया पेड़ा।
डाहोठा : सर्दी के लिए सुरक्षित की गई छाछ।
पंगति : पांगी के लिये स्थानीय लोगों द्वारा प्रयुक्त शब्द।
पट्टट : पत्थर का बना तवा जिस पर विशेष पकवान बनाये जाते हैं।
पटम्हारा : विवाह के समय वर का सहायक
पिरोजा : फीरोज़ा
पिलभ : सगाई का एक सोपान।
पुनहंई : बीज बोने का प्रारंभ करने का एक त्यौहार।
पैगंई : पांगी के लिये प्रयुक्त शब्द
ब्योराही : मृत्यु संबंधी सूचना देने वाला व्यक्ति।
भटोरी : पांगी क्षेत्र में भोट लोगों की बस्तियां।
मथ : पत्थर का छोटा सा तवा।
मनोटी : देखो मथ।
माउठ : प्रजा की विशेष बैठक
याच : यात्रा (जात्र)
याठ : देखो याच।

7. पहाड़ और देवता : अभयदेव अंगीर विपासा मार्च-अप्रैल 1988
8. लोक-कला और उसका संरक्षण : सूरत ठाकुर : हिमप्रस्थ जून-1990
9. पहाड़ी संस्कृति तथा कला के स्रोत : पनघट शिलांए : रमेश जसरोटिया : सोमसी अक्तूबर 1981
10. टुंडा राक्षस : कृष्ण लाल चम्बयाल : गिरिराज 6, सितम्बर 1989

अन्य स्रोत

स्थानीय लोगों से साक्षात्कार तथा यात्रा के समय अनुश्रुतियों तथा अन्य प्रमाणिक स्रोतों पर आधारित सामग्री

●●●

हिमालय क्षेत्र प्राकृतिक सौन्दर्य, देवी देवताओं के अधिष्ठान, ऋषि मुनियों की तपस्थली तथा अनेक पौराणिक जनजातियों की कर्मस्थली के रुप में विख्यात है देवात्मा हिमालय के अंचल में स्थित हिमाचल प्रदेश का जनजातीय क्षेत्र पांगी पंगवाल जनजातीय लोक संस्कृति, इतिहास, धार्मिक आस्था, रीति रिवाज, मेले, त्यौहार, वास्तुकला, तथा समृद्ध परंपराओं की विरासत को संजोए हुए है । वर्फ की सफेद चादर, कड़ाके की सर्दी, दुर्गम पर्वतीय मार्ग, अथक परिश्रम, साधनहीनता में भी आत्म संतोष, देवी देवताओं के वरदान से जीवन के दुःखभार को ढोने की क्षमता तथा विकास के नये सोपान की तलाश पंगवाल जनजीवन के अभिन्न अंग हैं। इसी पारम्परिक लोक संस्कृति का प्रामाणिक दस्तावेज है - पांगी ।

डॉ. विद्याचन्द ठाकुर